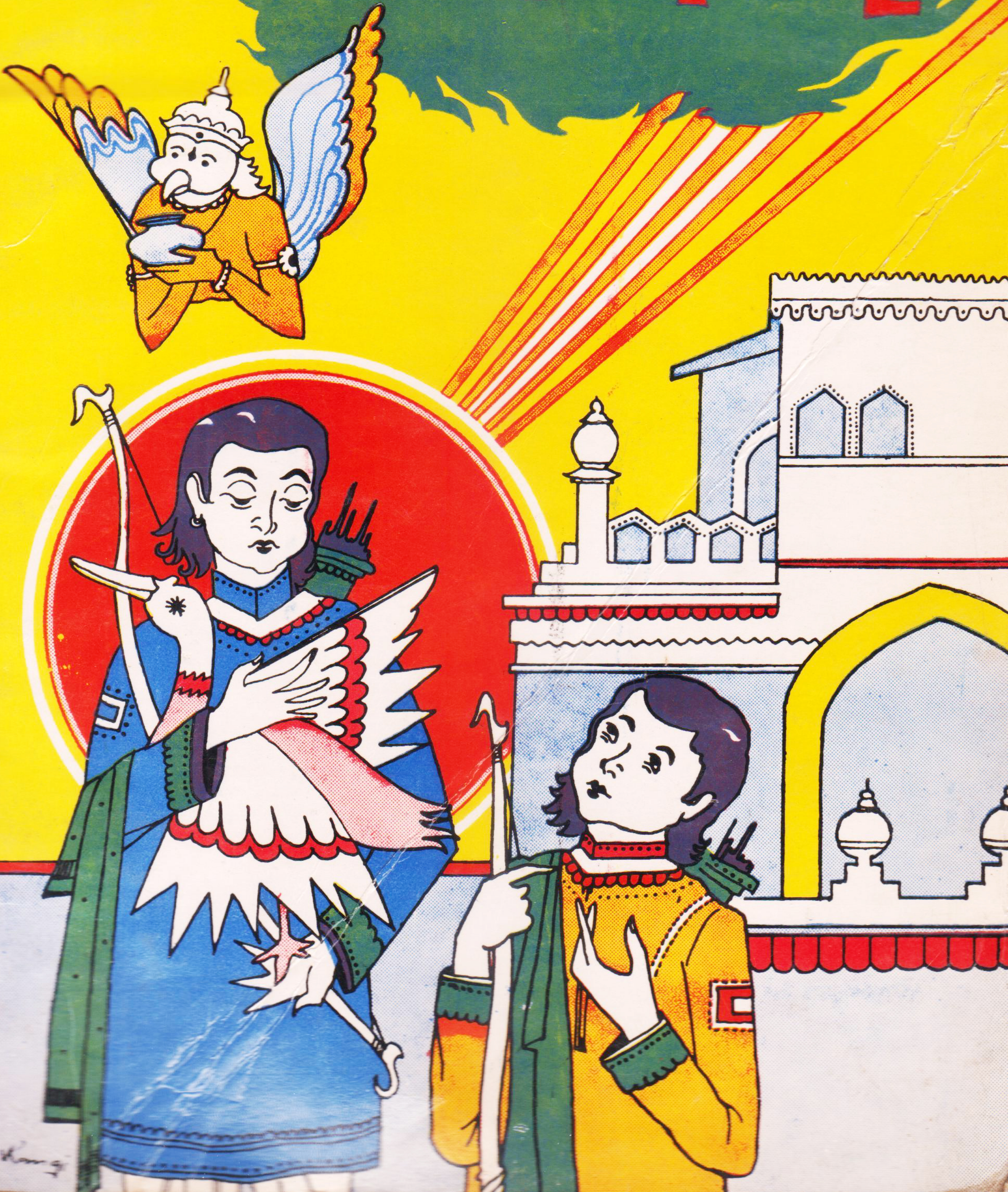
आचार्य चतुरसेन

बाल कथाएं





आचार्य चतुरसेन

बाल कथाएँ

अनुक्रम

कुमार सिद्धार्थ

सन्ध्या का मनोरम काल था। पश्चिम दिशा लाल हो रही थी। गायें टल-टल टाल बजाती हुई अपने बछड़ों से मिलने की उमंग में घर लौट रही थीं, पक्षीगण उड़-उड़कर बसेरा लेने जा रहे थे।

कपिलवस्तु नगर के बाहर राजोद्यान में दो राजकुमार धनुष-बाण लिये, धीरे-धीरे राजमहल की ओर लौट रहे थे। एक का नाम देवदत्त था, दूसरे का सिद्धार्थ। पक्षियों की उड़ती पंक्ति देखकर राजकुमार सिद्धार्थ ने कहा—

'अहा! देखो भाई, इन पक्षियों की पंक्ति कैसी सुन्दर लग रही है। ये राजहंस उड़े जा रहे हैं।



देवदत्त ने देखा, एक कुटिल हास्य किया, धनुष पर बाण चढ़ाया और राजहंसों के उड़ते समूह पर छोड़ दिया। सिद्धार्थ का दिल धड़कने लगा। उसने घबराई दृष्टि से आकाश की ओर देखा। एक राजहंस बाण-विद्ध होकर लहू टपकाता हुआ, सुध-बुध खो तड़पता हुआ पृथ्वी की ओर आ रहा था, शेष चीत्कार करते हुए भयभीत हो भाग रहे थे।

देवदत्त यह देखकर हंसने लगा, पर सिद्धार्थ की आंखों में पानी भर आया। उसने दौड़कर भूमि पर छटपटाते हुए राजहंस को गोद में उठा लिया। हंस के पर में तीर घुसा हुआ था और कान से रक्त बह रहा था। उसके जीवन की आशा न थी।

देवदत्त ने कहा—'यह शिकार मेरा है, इस पर मेरा अधिकार है।'

'इस पर तुम्हारा अधिकार क्यों है ?'

'इसलिए कि मैंने इसे मारा है।'

'मैंने इसे बचाया है। मारने वाले की अपेक्षा बचाने वाले का अधिकार अधिक है। जाओ, मैं तुम्हें यह पक्षी न दूंगा।'

कुमार ने उसके पैर से तीर निकाला, घाव पर मरहम लगाया और यत्न से उसकी सुश्रूषा की। देवदत्त सिद्धार्थ पर क्रुद्ध होकर चला गया।

अन्त में कुमार के यत्न से हंस के प्राण बच गये, उसका घाव भर गया। कुमार को उससे प्रेम हो गया और क्षण-भर भी उसे आंखों की ओट न होने देता था। देवदत्त ने एक बार फिर सिद्धार्थ से हंस के लिए झगड़ा किया और सिद्धार्थ के इंकार करने पर क्रोध में कहा—'अच्छी बात है, इस पक्षी पर मेरा अधिकार है या तुम्हारा—इसका निर्णय मैं महाराज से कराऊंगा।'

देवदत्त ने महाराज शुद्धोधन से भरी सभा में जाकर कहा—'महाराज, मेरे बाण से गिरे हुये पक्षी पर मेरा अधिकार है। कुमार सिद्धार्थ उसे मुझे नहीं देते। कृपा कर न्याय कीजिये और मेरा पक्षी मुझे दिलाइये।'

सिद्धार्थ दरबार में आये। उनकी गोद में राजहंस था। वह उनकी छाती से लगा हुआ गर्दन ऊंची करके राजदरबार को देख रहा था और कुमार प्रेम से उसकी गर्दन पर हाथ फेर रहा था। महाराज ने सिद्धार्थ की इस प्रेम-भावना को देखा परन्तु देवदत्त की मांग न्यायोचित थी। आखेट पर मारने वाले का ही अधिकार होता है।

राजा के सामने अद्भुत न्याय विषय था। सारी राज-सभा कौतूहल से इस अभियोग के निर्णय को सुनने के लिए उत्सुक थी। कुछ देर चुप रहने के बाद महाराज ने सिद्धार्थ से पूछा—'पुत्र ! यह राजहंस किसका है ?'

कुमार ने नम्रतापूर्वक कहा—'महाराज, यह मेरा है ?'

देवदत्त ने चटककर कहा—'नहीं, कुमार झूठ बोल रहे हैं, यह पक्षी मेरा है।'

महाराज ने गर्दन टेढ़ी करके कहा—'किस तरह, तुम्हारे पास क्या प्रमाण है ?'

'यह आकाश में उड़ा जा रहा था। मैंने इसे बाण-विद्ध किया और यह घायल हो पृथ्वी पर आ गिरा। आप राजकुमार से ही यह बात पूछ लीजिए।'

सिद्धार्थ ने कहा—'महाराज, देवदत्त सत्य कहते हैं।'

तब महाराज ने कुमार से कहा—'तब यह तुम्हारा पक्षी कैसे हो गया।'

कुमार ने कहा—'महाराज, देवदत्त ने इसे मार गिराया था, पर मैंने इसका उपचार किया। यदि मैं उपचार न करता तो यह मर गया होता। देवदत्त का अधिकार इस पर तब था जब उसने इसे घायल करके गिराया था। पर अब मेरी सेवा से यह स्वस्थ हो चला है इसलिए इस पर अब मेरा अधिकार है।'

महाराज किंकर्त्तव्यविमूढ़ बैठ गये। वे कुछ भी निर्णय न कर सके।



एक वृद्ध मन्त्री ने हाथ जोड़कर कहा—'महाराज, आज्ञा पाऊं तो कुछ निवेदन करूं ?'

महाराज ने कहा—'कहो, इसका न्याय कैसे किया जाय।'

मन्त्री ने कहा—'दोनों राजकुमार अलग खड़े हो जायें और बीच में हंस छोड़ दिया जाय। दोनों राजकुमार उसे पुकारें, पुकारने पर पक्षी जिसके पास चला जाय वही उसका मालिक है।'

मन्त्री का वक्तव्य सबने स्वीकार किया। हंस को बीच सभा में छोड़ दिया गया। दोनों कुमार सभा के अलग-अलग कोने में जा खड़े हुए। पक्षी भयभीत हो सिकुड़कर बैठा रहा। महाराज के कहने पर देवदत्त ने चुमकारकर पक्षी को बुलाने की अनेक चेष्टाएं की, पर हंस ने उसकी ओर देखा भी नहीं। वह और भी सिकुड़कर थर-थर कांपने लगा।

इसके बाद महाराज के संकेत से सिद्धार्थ आगे बढ़े। सिद्धार्थ के नेत्रों में प्रेम और दया का समुद्र उमड़ रहा था। उन्होंने गद्गद् कण्ठ से पक्षी को पुकारा; और पक्षी अपने घायल पंखों को घसीटता हुआ सिद्धार्थ के पैरों में जा लोटा।

राजसभा उल्लास से जय-जयकार कर उठी। कुमार ने पक्षी को उठाकर छाती से लगाया और शुश्रूषा करने लगा।

एक दिन स्वस्थ होकर पक्षी उड़ गया। मानो सिद्धार्थ का मनोरथ सिद्ध हो गया।

उपमन्यु

बहुत पुराने जमाने की बात है। उन दिनों न आज के से शहर थे, न बड़ी आलीशान यूनिवर्सिटियां। विद्वान् ऋषिगण वनों में रहते और छात्रगण उन्हीं के आश्रम में रहकर विद्योपार्जन करते थे। वे न फीस लेते थे, न उस जमाने के विद्यार्थी—टाई, कालर, कोट, पैन्ट, चश्मे से लैस रहना सीखे थे। वे गुरु-गण भी पात्रापात्र का विचार कर विद्या देते थे। इसी से उनके शिष्य विद्यामृत पान कर अमर हो जाते थे।

ऋषि धौम्य बड़े उच्चकोटि के महात्मा थे। उनके एक शिष्य का नाम उपमन्यु था। एक दिन ऋषि ने शिष्य से कहा—'बेटा उपमन्यु ! मैं तुम्हें अपनी गायें चराने का काम सौंपता हूं—तुम यत्न से उनकी देखभाल रखना।'

उपमन्यु ने गुरुजी की आज्ञा शिरोधार्य की और वह गायों को चराने लगा। सारे दिन गायों को चराकर वह शाम को आश्रम में आता और गुरुजी को प्रणाम कर उनके सामने खड़ा हो जाता। इस तरह करते-करते कई वर्ष बीत गये।

एक दिन ऋषि ने पूछा—'क्यों, बेटा उपमन्यु ! तुम तो खूब मोटे हो रहे हो। कहो, क्या खाते-पीते हो ?

उपमन्यु ने कहा—'महाराज, मैं गांवों से भिक्षा मांग लाता हूं।'

गुरुजी ने कहा—'यह क्या करते हो ? भिक्षा मांगकर जो लाते हो, उसे बिना हमें दिखाये ही खा जाते हो ? यह ठीक नहीं है। जो भिक्षा लाओ, हमारे सामने उपस्थित करो।'

उपमन्यु ने कहा—'बहुत अच्छा, गुरुजी।'

इसके बाद वह भिक्षा लाकर गुरुजी के सामने रख देता और वे उसमें से उसे कुछ भी नहीं देते थे।

उपमन्यु तब भी खुश रहने लगा। कुछ दिन बाद उसे खूब मोटा-ताजा देखकर गुरुजी ने पूछा—'अरे, पुत्र उपमन्यु ! अब तुम क्या खाते हो ? जो भिक्षा मांगकर तुम लाते हो वह तो मैं रख लेता हूं।'

उपमन्यु ने कहा—'महाराज, मैं फिर भिक्षा मांग लाता हूं। उसी से मेरा काम चल जाता है।'

गुरुजी ने कहा—'वाह, यह तो महा-अधर्म है। इससे दूसरों की भिक्षा में कमी पड़ेगी। तुम्हें ऐसा काम हर्गिज नहीं करना चाहिए।'

उपमन्यु ने स्वीकार किया और चला गया। थोड़े दिन बाद इसे खूब मोटा-ताजा देखकर ऋषि ने कहा—'पुत्र, तू अपनी भिक्षा तो सब मुझे दे देता है और दुबारा भी मांगने नहीं जाता फिर तू अब क्या

खाता है जो ऐसा मोटा-ताजा बना हुआ है।'

उपमन्यु ने कहा—'महाराज, आजकल मैं गायों का दूध पी लेता हूं।'

महर्षि ने कहा—'राम-राम, तुम यह क्या करते हो ? विना मेरी आज्ञा के गायों का दूध कैसे पी लेते हो ?'



उपमन्यु ने कहा—'महाराज, अब मैं गायों का दूध न पीऊंगा।'

उपमन्यु अब दिन-भर गायें चराता और शाम को गुरुजी के सामने आ खड़ा होता। जब इस ़त दिन हो गए तो गुरुजी ने फिर उससे पूछा—'अरे पुत्र, तू न तो अपने लिए भिक्षा लाता है ााय का दूध ही पीता है। अब तू क्या खाता है, जो वैसा ही मोटा बना हुआ है।'

उपमन्यु ने कहा—'बछड़ों के मुंह से जो झाग गिरता है, मैं वही खा लेता हूं।'

ऋषि ने कहा—'हरे-हरे बेटा, ऐसा फिर कभी न करना। बछड़े जब तुम्हें फेन खाता देखेंगे तो ेन गिरायेंगे, इससे वे भूखे रहेंगे।'

उपमन्यु ने हाथ जोड़कर कहा—'अच्छा महाराज, अब मैं फेन भी न खाऊंगा।'

और कुछ दिन वह गायें चराता रहा। एक दिन शाम को वह यथा-नियम गुरुजी के सामने नहीं । गुरुजी ने शिष्यों से पूछा—'अरे! आज उपमन्यु कहां है? उसका सब खाना-बीना बन्द कर । कहीं हमसे नाराज होकर तो वह इधर-उधर नहीं चल दिया? चलकर देखें तो वह कहां है।' यह ुरुजी अपने सब शिष्यों को लेकर वन में उपमन्यु को ढूंढ़ने निकले। वन में जाकर महर्षि ने का नाम ले-लेकर पुकारना शुरू किया। बात यह हुई थी कि उपमन्यु ने और कुछ उपाय न देख पत्ते खा-खाकर पेट की ज्वाला बुझाई थी। इससे वह अन्धा हो गया था और कुएं में गिर ।



गुरुजी की आवाज सुनकर उपमन्यु ने कुएं के भीतर से चिल्लाकर कहा—'भगवन्! मैं कुएं में हूं।'

'अरे पुत्र, तुम कुएं में कैसे गिर गए ?'

'आक के पत्ते खाने से मैं अन्धा हो गया हूं। इसलिए मैं कुएं में गिर गया।'

गुरुजी ने कहा—'अच्छा, तू अश्विनी-कुमारों की स्तुति कर। तेरी आंखें अच्छी हो जाएंगी।' उपमन्यु ने ऐसा ही किया।

अश्विनी-कुमारों ने प्रसन्न होकर कहा—'हम तेरी स्तुति से बहुत प्रसन्न हैं। ले, यह हविष्य खा।'

उपमन्यु ने उन्हें प्रणाम करके कहा—'मैं आपकी बात तो नहीं टाल सकता; पर पहले गुरुजी को अर्पण किये बिना मैं कुछ नहीं खा सकता।'

इस पर अश्विनी-कुमारों ने कहा—'तेरी गुरु-भक्ति धन्य है! तेरी आंखें अच्छी हो जाएंगी और तेरा कल्याण भी हो जायगा।'

उपमन्यु की आंखें अच्छी हो गईं। और उसने बड़ी भक्ति से अश्विनी-कुमारों को धन्यवाद दिया। इसके बाद गुरुजी ने बड़े प्रेम और यत्न से उसे सब विद्याओं में पारंगत कर दिया।

पितृ-भक्त श्रवण

बूढ़े-बुढ़िया दोनों अन्धे थे। घर में बहू थी चतुर और चालाक। पुत्र था माता-पिता का परम भक्त। पुत्र ने अपनी बहू को आज्ञा दे रखी थी कि माता-पिता की भली-भांति सेवा करे, परन्तु वह अपने लिए और पति के लिए उत्तम भोजन बनाती और अंधे सास-ससुर को खराब खाना खिलाती थी। पितृ-भक्त श्रवण माता-पिता को साथ बैठाकर भोजन करता था, पर उसकी स्त्री ने यह चालाकी की कि हांड़ी के बीच में पर्दा लगा रखा था। आधी में खीर बनाती और आधी में छाछ की महेरी बनाती। श्रवण को कुछ पता न चला कि एक ही हांडी में दो प्रकार का भोजन बन रहा है। एक दिन श्रवण ने अपनी थाली माता-पिता के आगे धर दी। अंधे बूढ़े ने जो खीर खाई तो प्रसन्नता से चीख उठा। बोला—'वाह पुत्र, आज बहुत दिन बाद खीर खाई।'

श्रवण ने कहा—'यह क्यों, पिताजी ! खीर तो आप रोज ही खाते हैं।'

इस पर बूढ़े ने कहा—'अरे पुत्र, छाछ की महेरी को खीर कहते हैं ?'

श्रवण को बड़ा आश्चर्य हुआ पर जब उसे पता लगा कि उसके माता-पिता के साथ उसकी स्त्री ने अन्याय किया है तो उसे बहुत दुःख हुआ।

तब से उसने माता-पिता की सेवा का भार अपने ऊपर ले लिया। वह उनकी सारी सेवा-टहल स्वयं करता। अपने आप पानी भरकर उन्हें नहलाता, कपड़े पहनाता, धोता और भोजन बनाकर खिलाता था।

एक बार उसके माता-पिता ने तीर्थ-यात्रा की इच्छा व्यक्त की। उन दिनों तीर्थ-यात्रा इतनी सुलभ न थी जितनी अब है। न रेल थी और न पक्की सड़कें। सैकड़ों कोस तक वन-ही-वन थे। श्रवण एक बहंगी बना, माता-पिता को उसमें बैठाकर तीर्थ-यात्रा को ले चला। वह दिन-भर उन्हें लेकर चलता और रात को सेवा करता। इसी प्रकार कई वर्ष घूम-फिरकर उसने बहुत से तीर्थों की यात्रा की।

एक दिन श्रवण और उसके माता-पिता एक वन में ठहरे थे। उन्हें प्यास लगी, उन्होंने श्रवण को नदी से जल लाने को कहा। श्रवण घड़ा लेकर नदी में जल भरने चला। नदी कुछ दूर थी, दैवयोग से अयोध्या के राजा दशरथ उस समय शिकार खेलते उधर से आ निकले। वे शब्दवेधी बाण चलाने में बड़े चतुर थे। श्रवण ने जब घड़े में जल भरा तो उसमें से शब्द हुआ। राजा ने समझा नदी-तीर पर कोई जंगली जीव पानी पी रहा है। उन्होंने ताककर तीर मारा। निशाना अचूक था, वह श्रवण की छाती के पार हो गया। श्रवण वहीं गिरकर कराहने लगा।

राजा ने जाकर देखा, सुन्दर युवक वेदना से कराह रहा है। और उसकी छाती से खून की धार

वह रही है। राजा को बहुत पछतावा हुआ। उसने उसकी छाती से तीर निकाला और उसका परिचय पूछा।

श्रवण ने कहा---'वहां वृक्ष के नीचे मेरे माता-पिता हैं। वे अंधे हैं और प्यासे हैं। तुम उन्हें जल दे आओ।' इतना कहते-कहते श्रवण ने प्राण त्याग दिये।



राजा पानी का घड़ा लेकर अंधे बूढ़े-बुढ़िया के पास गया। पानी रखकर चुप-चाप खड़ा हो

गया। बूढ़े ने पुत्र को पुकारा, पर न बोलने पर उन्हें आश्चर्य हुआ।

अन्त में राजा ने अपना परिचय दिया और सारी कथा कह सुनाई। पुत्र का मरना सुनकर दोनों अन्धे फूट-फूटकर रोने लगे। अत्यन्त दुखी होकर उन्होंने राजा को पुत्र की चिता बनाने की आज्ञा दी। राजा ने अत्यन्त दुखी होकर चिता बनाई और दोनों बूढ़े-बुढ़िया पुत्र की लाश गोद में लेकर जल मरे। मरते वक्त उन्होंने दशरथ को श्राप दिया कि जैसे हम पुत्र वियोग में मरते हैं, उसी तरह तुम भी मरोगे।

× × × ×

समय बीतता चला गया। दशरथ बूढ़े के श्राप को भूले नहीं। अन्त में पुत्र के वियोग में ही उनके भी प्राण गये।

ईश्वर-भक्त प्रह्लाद

प्रह्लाद का नाम हिन्दुओं में घर-घर विख्यात है। उनका जन्म एक प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित वंश में हुआ था। महर्षि कश्यप के सत्रह स्त्रियां थीं। सबसे बड़ी का नाम 'दिति' था। दिति के गर्भ से उनके दो महापराक्रमी पुत्र हुए। उनका नाम हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष रखा गया। दिति के पुत्र होने के कारण उनका नाम दैत्य पड़ गया। पीछे अपने अमानुषिक कर्मों के कारण दैत्य नाम बुरे अर्थों में माना जाने लगा। इन्हींके वंशज दैत्य कहलाये। प्रह्लाद हिरण्यकश्यप के पुत्र थे। इनकी माता का नाम कक्षाधु था। प्रह्लाद पांच भाई थे जिनमें प्रह्लाद तीसरे थे। इनकी एक बहन भी थी जिसका नाम सिंहिका था।

हिरण्यकश्यप बड़ा था और हिरण्याक्ष छोटा। हिरण्यकश्यप राज्य को देखता था। हिरण्याक्ष यों ही घूमता-फिरता, लोगों को सताता था। उससे सब लोग भयभीत रहते थे। हिरण्याक्ष बड़ा वीर, साहसी और विजयी था। उसने बड़े-बड़े देश अपने बाहुबल से जीतकर अपना शासन जमा लिया। अंत में वराह अवतार हुआ और हिरण्याक्ष मार डाला गया, जिससे सब लोगों को बहुत प्रसन्नता हुई। परन्तु इससे हिरण्यकश्यप को बहुत क्रोध आया और उसने सत्पुरुषों को सताना आरम्भ कर दिया। भाई के मरने का उसे अत्यन्त दुख हुआ। वह रात-दिन बेचैन रहने लगा। एक बार उसकी रानी ने शयनागार में जाकर देखा कि राजा बेचैन हो करवटें बदल रहा है, तो उसने कहा—'महाराज ! जब सारा संसार आनन्द-मग्न हो सो रहा है, आप ऐसे बेचैन क्यों हो रहे हैं ?'

हिरण्यकश्यप ने कहा—'जब से पापी देवताओं ने मेरे भाई हिरण्याक्ष को मारा है, तबसे देवताओं की ताक़त बढ़ गई है और हमारे दैत्य-कुल की बड़ी अप्रतिष्ठा हुई है। देवताओं की शक्ति बढ़ती ही जा रही है। मैं चाहता हूं कि सारे देवताओं को नष्ट कर दूं।'

रानी ने कहा—'इसमें इतनी चिन्ता करने की क्या बात है ? बेचारे देवताओं की क्या हैसियत है जो आपके तेज और प्रताप के सामने खड़े रह सकें। आप मन के दुख को त्याग कर वीर की भांति युद्ध की तैयारियां कीजिये।'

हिरण्यकश्यप ने कहा—'तुम्हारा कहना ठीक है, परन्तु मुझे विष्णु का बड़ा डर है। उसी ने छल करके मेरे भाई को मारा है और देवताओं को उसका बड़ा भारी सहारा है। उससे मुक़ाबला करने की मेरी शक्ति नहीं है। इसलिए मैंने एक बात सोची है। वह यह कि मैं तप करके शिवजी से वरदान प्राप्त करूं। तब निर्भय होकर इन देवताओं से युद्ध करूं। इसी में दैत्य-कुल का लाभ है।'

रानी ने कहा—'आप सब नीति के ज्ञाता और बुद्धिमान हैं। आपको मैं क्या सम्मति दे सकती हूं। आप जो ठीक समझें, करिये। जब देवताओं ने विष्णु का सहारा लिया है तब आपको भी शिवजी का

सहारा लेना ही चाहिये।'

इस तरह रानी से सलाह करके हिरण्यकश्यप आराम की नींद सोया। दूसरे दिन मन्त्री और पुत्र को राजपाट सौंपकर कैलाश पर्वत पर तपस्या करने चला गया। जिस समय वह तपस्या करने जा रहा था उस समय रानी गर्भवती थी। उसने अपने गुरु शुक्राचार्य को बुलाकर कहा—'गुरुजी, आप गर्भस्थ शिशु के सब संस्कार यथा-विधि कराइयेगा। मैं कैलाश पर्वत पर तपस्या करने जा रहा हूं।'

जब देवताओं को इस बात का पता लगा तो वह बड़े घबराये। देवराज इन्द्र ने हिरण्यकश्यप की राजधानी हिरण्यपुर पर धावा बोल दिया। सारे शहर को लूट-पाटकर उजाड़ दिया। सेनापतियों और राजकुमारों को कैद कर लिया गया। बहुत-से दैत्य मारे गये और बहुत-से जंगलों में छिप गये। दैत्यों की बहुत-सी सम्पत्ति देवता लूटकर ले गये।

हिरण्यकश्यप की रानी को भी पकड़कर ले गये थे। पर नारद ने कहकर उसे छुड़ा लिया और वह कह-सुनकर उसे अपने आश्रम में ले आये। वहां पर नारदजी के उपदेशों से उसकी भगवान् में भक्ति हो गई। उसका प्रभाव उसके गर्भ के बच्चे पर भी पड़ा।

उधर हिरण्यकश्यप ने वन में घोर तपस्या की। उससे प्रसन्न होकर शिवजी ने दर्शन दिये और कहा—'वर मांग।' हिरण्यकश्यप ने कहा—'महाराज, मुझे यह वर दीजिये कि मुझे कोई आदमी न मार सके। मेरी मृत्यु न घर में हो, न बाहर हो; न धरती में हो, न आसमान में हो; न दिन में, न रात में।'

शिवजी ने हंसकर कहा—'अच्छा, ऐसा ही होगा।'

दैत्यराजा जब वर प्राप्त कर अपनी राजधानी को लौटा तो उसने देखा राजधानी उजाड़ और सूनी पड़ी है और राजमहल में भी सन्नाटा है। जब उसने इन्द्र के अत्याचारों की कहानी सुनी तो वह क्रोध से थर-थर कांपने लगा। देवताओं ने जब वर-प्राप्ति की बात सुनी तो बड़े घबराए और सब विष्णु भगवान् के पास गये और कहा—'महाराज, अब क्या करना होगा।'

विष्णु भगवान् ने उनको तसल्ली दी और कहा—'तुम डरो मत, मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा।'

इन्द्र ने दैत्यों और राजकुमारों को डर के मारे छोड़ दिया। नारदजी भी उनकी गर्भवती रानी को हिरण्यकश्यप के पास छोड़ आए। पुत्र, मंत्रियों और रानी को पाकर उसने फिर से हिरण्यपुर बसाया। थोड़े दिन में फिर हिरण्यपुर पहले की तरह वैभव और समृद्धि का केन्द्र हो गया।

थोड़े दिन बाद रानी के गर्भ से प्रह्लाद का जन्म हुआ। बालक के पैदा होते ही बाजे बजने लगे और बधाइयां गाई जाने लगीं। ग़रीबों और अपाहिजों को अन्न और वस्त्र बांटा जाने लगा। राजधानी भर में उत्सव हो उठा। दैत्यराज भी परम प्रसन्न हुआ। बालक धीरे-धीरे बड़ा हुआ। दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने उसके संस्कार कराए और उसका नाम प्रह्लाद रखा—क्योंकि उसे देखकर सभी प्रसन्न होते थे।

प्रह्लाद अत्यन्त रूपवान्, बुद्धिमान् और धर्मात्मा बालक था। वह चुपचाप एकान्त में बैठा कुछ सोचा करता था। धीरे-धीरे उसे विद्याभ्यास कराया गया। वह अति मेधावी था और जो पाठ गुरुजी पढ़ाते थे, झट सीख लेता था।

एक दिन वह पाठशाला से बालकों के साथ आ रहा था। रास्ते में देखा कि एक कुम्हारी अपने घर के बाहर बैठी रो रही है और भगवान् को पुकार रही है। उसके घर के आंगन में अवां जल रहा है। बालक प्रह्लाद ने करुणा करके पूछा—'कुम्हारी, तू क्यों रो रही है?'

कुम्हारी ने कहा—'बेटा, मेरा मन बड़ा दुखी है, तुमसे क्या कहूं ? मेरे घर में एक बिल्ली ने दो बच्चे दिये थे। सर्दी से उन्हें बचाने के लिए मैंने उन्हें एक घड़े में रख दिया था। मैं तो बाहर गई थी। मेरे कुम्हार ने वह घड़ा भी पकाने को आग में रख दिया। अब बेचारे बच्चों को भगवान् ही बचा सकता है।' इतना कहकर वह फिर रोने और भगवान् को पुकारने लगी।

प्रह्लाद ने कहा—'भगवान् कैसे अब बच्चों को बचा सकते हैं ? बच्चे तो आग में जल-भुन गये होंगे।'

कुम्हारी ने कहा—'पुत्र, भगवान् आग में भी रहते हैं पर नहीं जलते, आग भी उन्हीं की बनाई है। वे चाहें तो बच्चे बच सकते हैं। उनकी शक्ति अपार है। इसी से मैं उन्हें पुकार रही हूं। अगर बच्चे मर गये तो मुझे ही पाप लगेगा।'

प्रह्लाद ने कहा—'अच्छा, कल मैं आकर देखूंगा कि तेरे भगवान् ने बच्चों को बचाया या नहीं।'

२

दूसरे दिन कुम्हारी के घर प्रह्लाद ने जाकर देखा तो छोटे-छोटे बच्चे कुम्हारी की गोद में पूंछ हिला-हिलाकर दूध पी रहे हैं।



प्रह्लाद ने कहा—'यही वे बच्चे हैं ?'

'हां।'

'कैसे बचे ?'

'भगवान् ने बचाये।'

'आग में जले नहीं ?'

'जिधर बच्चे थे, उस ओर के सारे घड़े कच्चे रह गये, वहां तक आंच पहुंची ही नहीं।'

प्रह्लाद शोच में पड़ गया। उसने फिर कुम्हारी से कहा—'तूने कभी देखा है भगवान् को ?'

'नहीं बेटा, भगवान् कहीं दीखते थोड़े ही हैं। वे तो घट-घट में बसते हैं। उनका ध्यान करने से ही वे मन की इच्छा पूर्ण करते हैं।'

प्रह्लाद ने उत्सुकता से कहा—'तूने किया था उनका ध्यान।'

'मैंने कई बार रो-रोकर उनसे प्रार्थना की थी।'

'प्रार्थना उन्होंने सुनी ?'

'सुनकर ही तो बच्चों को बचाया। देखो, कैसे प्यारे बच्चे हैं।'

प्रह्लाद बच्चों से खेलने लगा और भगवान् का ध्यान करने लगा।

घर लौटकर वह एकान्त में बैठकर सोच रहा था—यह भगवान् कौन हैं ? कहां रहते हैं ? इनसे मिलना चाहिये।

उसकी माता ने कहा—'अरे पुत्र ! तुम यहां अकेले बैठे क्या सोच रहे हो ?'

'मैं भगवान् की बात सोच रहा हूं, मां !'

'नहीं बेटे, ऐसा कभी मत कहना। भगवान् तेरे पिता के शत्रु हैं। जो कोई भगवान् का नाम लेता है, वे उसी का सिर काट लेते हैं ?'

'पिताजी ऐसा क्यों करते हैं, मां ? भगवान् तो बड़े दयालु हैं। उन्होंने कुम्हारी के बिल्ली के बच्चों की जान बचा ली।'

'पागल कहीं का ! भगवान् देवताओं के साथी हैं, उन्हीं की मदद से तो देवताओं ने हमें इतने दुःख दिये हैं। तुम्हारे पिता के राज्य में उन्हीं की दोहाई बोली जाती है। उन्हीं के नाम का डंका बजता है।

'तो क्या पिताजी ही इस दुनिया के कर्ता-धर्ता हैं ?'

'वे पृथ्वी के राजा हैं ?'

'वे जलते कुम्हार के अवां में से बिल्ली के बच्चों को ज़िन्दा बचा सकते हैं ?'

'अरे, उनके प्रभाव के सामने बड़े-बड़े देवता थर-थर कांपते हैं।'

प्रह्लाद चुप हो गया, फिर उसने कहा—'मां, मैं तो भगवान् को प्यार करता हूं। वे बड़े दयालु हैं। मां तुम भी तो उनका ध्यान किया करो। वे किसी को दीखते नहीं हैं। परन्तु मन में उनका ध्यान करने से वे झट मनोकामना पूरी कर देते हैं।'

बालक प्रह्लाद की इन बातों से रानी ने मन में कहा—'ऐसी ही बातें नारद जी कहा करते थे, इसके पिता सुनेंगे तो आफत मचा देंगे।' प्रकट में कहा—'अच्छा चल, अब कुछ खा-पी और आराम कर।' मां की प्रेम-भरी वाणी सुन प्रह्लाद ने माता के गले में हाथ डाल दिया।

३

अब प्रह्लाद बड़ा हो गया, वह बराबर भगवान् की ही बातें सोचा करता था। एक दिन हिरण्यकश्यप ने गुरु शुक्राचार्य को बुलाकर कहा—'आप हमारे कुलगुरु हैं। अब आप प्रह्लाद को हमारे

वज्र-परंपरा के अनुरूप शिक्षा दीजिए ?'

शुक्राचार्य ने कहा—'बहुत अच्छा, राजन् ! मैं प्रह्लाद को गुरुकुल लिये जाता हूं और शीघ्र ही शस्त्र और शास्त्र में निपुण कर दूंगा।'

इतना कह वे प्रह्लाद को लेकर चले गये। उन्होंने उसे सण्ड और अर्भक नामक विद्वानों को सौंप दिया। वे दैत्यों की सभा के महापण्डित थे। प्रह्लाद ने जब उनके सामने भी भगवान् की चर्चा की तो उन्होंने उसे बहुत रोका। पर ज्यों-ज्यों प्रह्लाद को भगवान् की चर्चा से रोका गया, त्यों-त्यों वह अधिक भगवान् की चर्चा करने लगा। धीरे-धीरे विद्यार्थियों में भगवान् के सम्बन्ध में विवाद बढ़ चला। सण्ड और अर्भक ने यह देखा तो बहुत घबराये क्योंकि वह जानते थे कि राजा को अगर इस बात का पता लग गया तो वह बिना प्राण लिये न छोड़ेगा। उन्होंने प्रह्लाद और विद्यार्थियों को बहुत डांटा-डपटा पर कुछ भी लाभ न हुआ। विद्यार्थियों में भगवान् की चर्चा बढ़ती ही गई। अब प्रह्लाद को पीटा भी जाने लगा। परन्तु इसका भी उल्टा ही असर हुआ। बालकों ने गुरु लोगों के विपरीत एक गुट बना लिया। लाचार हो गुरु ने प्रह्लाद को राजा के सामने उपस्थित कर कहा कि यह भगवान् का नाम लेता है, पढ़ता-लिखता कुछ नहीं।

राजा ने सब बातें सुनीं तो वह क्रोध से थर-थर कांपने लगा। उसने प्रह्लाद से पूछा—'क्या यह बात सच है ?'

'क्या बात पिताजी ?'

'कि तुम मेरे शत्रु भगवान् का नाम लेते हो ?'

'भगवान् तो किसी के शत्रु नहीं, पिताजी।'

'अरे मूर्ख, मेरे ही सामने भगवान् की बड़ाई करता है।'

'भगवान् बड़े हैं, बड़ाई के योग्य हैं इसी से, पिताजी।'

'अरे कुलकलंकी, तू दैत्य-वंश का राहु है। तूने गुरुकुल के सभी विद्यार्थियों को मेरा विद्रोही बना दिया है।'

'नहीं, पिताजी, वे सिर्फ भगवान् की पूजा करते हैं।'

हिरण्यकश्यप ने क्रोध से लाल होकर कहा—'अरे अभागे, भगवान् मैं हूं इस पृथ्वी पर। मेरी ही पूजा होनी चाहिए।'

'परन्तु पिताजी आप भगवान् नहीं हो सकते। आप क्रोध करते हैं, भगवान् क्रोध नहीं करते।'

'कौन है वह भगवान् ?'

'जिसने आपको और मुझे बनाया है।'

यह सुनकर हिरण्यकश्यप ने अध्यापकों से कहा—'क्यों रे, अधम ब्राह्मणो ! तुमने मेरे पुत्र को यही शिक्षा दी है। मैं तुम्हें कोल्हू में पिलवा दूंगा।'

प्रह्लाद ने हाथ जोड़कर कहा—'नहीं, पिताजी, इसमें गुरुजी का दोष नहीं। मुझे तो भगवान् ने स्वयं सच्चा ज्ञान दिया है, और सब विद्यार्थियों को मैंने सिखाया है। मैं आप से निवेदन करता हूं कि आप भी क्रोध और अहंकार को छोड़कर भगवान् में अपना मन लगाइये।'

इस पर दैत्यराज, दांत पीसता हुआ सिंहासन से उठ खड़ा हुआ और कहा—'अच्छा रे, अच्छा, अधम ! तू मुझको भी उपदेश देने का साहस करता है।'

उसने तत्काल बधिक को बुलाने का आदेश दिया। बधिक के आने पर कहा—'श्मशान में ले

जाकर इसका तलवार से सिर काट ले। मेरे राज्य में भगवान् का नाम लेने वाला जीवित नहीं रह सकता।'

प्रह्लाद ने पिता को प्रणाम किया और जल्लाद के साथ हो लिया। राज-सभा के लोग शोक और आश्चर्य से बालक की वीरता को देखकर दंग थे। बधिक उसे लेकर जब मरघट में पहुंचे तो वहां का भयंकर दृश्य देखकर भी प्रह्लाद वैसा ही शान्त रहा। जल्लादों का उस पर हाथ नहीं उठता था। उन्होंने कहा—'कुमार! हमारा अपराध नहीं है। हम राजा के दास हैं।'

प्रह्लाद ने कहा—'तुम अपना काम करो भाइयो, भगवान् तुम्हें क्षमा करेंगे।'

परन्तु जल्लाद प्रह्लाद पर वार न कर सके। उनका हाथ ही न उठा। उनके हाथ कांप गये और तलवार छूटकर धरती पर जा पड़ी और वे घबराकर भाग गये।

दैत्यराज ने सुना तो उसने क्रोध से अधीर होकर प्रह्लाद को अन्धकूप में कैद कर दिया और लोगों से कहा कि उसे समझा-बुझाकर ठीक करें जिससे वह भगवान् का नाम न ले। परन्तु प्रह्लाद को तो अब सिर्फ भगवान् का आसरा था। उसकी माता ने रोकर उसे बहुत समझाया। परन्तु उसने माता को ढाढ़स देकर कहा—'माता! घबराओ मत, भगवान् सब भला करेंगे।'

जब हिरण्यकश्यप ने सुना कि वह अपने हठ पर डटा है तो मतवाले हाथी से पैरों तले कुचल डालने की आज्ञा दी।

मतवाला हाथी लाया गया और बालक प्रह्लाद को उसके सामने लाया गया। हाथी जोर-जोर से चिग्घाड़ने लगा। लोग यह दृश्य देख भयभीत हो गये। सब समझते थे कि यह मतवाला हाथी बेचारे प्रह्लाद की चटनी कर डालेगा। परन्तु प्रह्लाद को भय नहीं था। उसे विश्वास था कि भगवान् मेरे रक्षक हैं। ज्यों ही वह दुर्दान्त हाथी प्रह्लाद के पास आया उसने उसे सूंड से उठाकर मस्तक पर बैठा लिया। सब दर्शक अवाक् रह गये।

राजा ने अधीर होकर कहा—'इस अभागे को काले नाग से डसवा दो।'

प्रह्लाद को कारागार में बन्द कर दिया गया और उस कोठरी में विषधर सर्प छोड़ दिया गया। प्रह्लाद ने सर्प को भी भगवान् के रूप में देख स्तुति करने लगा। सर्प चुपचाप एक ओर गेंडुली मार-कर बैठा रहा। प्रातःकाल पहरुओं ने देखा—प्रह्लाद अचेत पड़ा सो रहा है और सांप फन उठाकर उसके सिर पर छाया कर रहा है। यह सब समाचार सुनकर राजा चिंता में पड़ गया। उसने मन्त्रियों से सलाह कर उसे हलाहल विष देने का संकल्प किया। विष मिले हुए लड्डू उसके पास भेजे गये और उसने भगवान् का नाम लेकर वे लड्डू खा लिये। परन्तु इतने पर भी उसकी मृत्यु न हुई। अन्त में निरुपाय हो हिरण्यकश्यप ने प्रह्लाद को धधकती चिता में भस्म कर देने की आज्ञा दे दी।

बड़ी भारी चिता बनाई गई और उसमें प्रह्लाद को हाथ-पांव बांधकर डाल दिया गया। चिता जल कर ठण्डी हो गई। प्रह्लाद वैसे ही बैठे रहे। तब हिरण्यकश्यप की बहिन ढुढ़ा ने कहा—'मुझे वरदान है कि मैं आग में नहीं जलूंगी। मैं प्रह्लाद को आग में लेकर बैठूंगी।' बस, फिर चिता बनाई गई और ढुढ़ा प्रह्लाद को गोद में लेकर बैठी। आग लगाई गई। ढुढ़ा जलकर भस्म हो गई—प्रह्लाद बैठे के बैठे ही रहे।

४

इन सब बातों से प्रह्लाद का नाम दूर-दूर तक फैल गया। लोग दूर-दूर से प्रह्लाद के दर्शन को आने लगे और घर-घर भगवान् की चर्चा होने लगी। प्रह्लाद भी अब भगवान् का कट्टर भक्त हो गया।

राजा ने उसे ऊंचे पर्वत पर ले जाकर ढकेल देने की आज्ञा दी। वह हांथ-पांव बांधकर समुद्र में भी फेंक दिया गया, परन्तु प्रह्लाद को तब भी चोट न आई।



प्रह्लाद पर जो इतने असीम अत्याचार हुए और प्रह्लाद की भारी भक्ति देखी तो प्रजा का हृदय प्रह्लाद के लिए पसीज उठा—सब कोई प्रह्लाद की शुभ-कामना करने लगे। भगवान् की सत्ता पर सभी की श्रद्धा होने लगी। राजा यह सब बातें देखकर क्रोध से उन्मत्त हो गया। और उसने प्रह्लाद को अपने

सन्मुख महल में लाने की आज्ञा दी। प्रह्लाद ने पिता को देखकर विनय-पूर्वक प्रणाम किया।

राजा ने कहा—'अरे अभागे, क्या अब भी तेरी बुद्धि ठिकाने नहीं लगी ? मैं अपने हाथों तेरा वध नहीं करना चाहता था, पर अब देखता हूं मुझे अपने हाथों से तेरा वध करना होगा। देखूंगा तुझे कौन मेरे हाथों से बचाता है, तू अपने भगवान् को बुला ले।'

प्रह्लाद ने कहा—'पिताजी, भगवान् को कहां से बुलाऊं। वह तो सब जगह व्यापक हैं। उनको बुलाने की क्या जरूरत है।'

राजा ने तब एक लोहे का खम्भा तैयार कराकर उसे आग में तपाकर लाल करा दिया। इसके बाद प्रह्लाद को खम्भे से बांध दिया। एक बार लोहे के उस लाल-लाल खम्भे को देखकर प्रह्लाद को भय हुआ, पर तुरन्त ही उसने देखा कि खम्भे पर चींटियां चढ़ रही हैं। बस, उसे साहस हो आया, ज्यों ही प्रह्लाद को खम्भे से बांधा गया, धरती हिलने लगी, भयानक शब्द होने लगे। तुरन्त भीषण शब्द के साथ खम्भा फट पड़ा और उसमें से एक अद्भुत मूर्ति निकल पड़ी जिसका आधा शरीर सिंह का और आधा मनुष्य का था। उसे देखकर हिरण्यकश्यप डर से कांपने लगा। उस मूर्ति ने विकट चीत्कार कर उसे अनायास ही पंजों में उठा लिया और दहलीज पर बैठकर, अपनी जांघों पर रखकर उसका पेट चीर डाला और आंतें अपने गले में डाल लीं।

इस प्रकार उस दैत्यराज का अन्त हुआ। प्रह्लाद ने उस नृसिंह मूर्ति के चरणों में सिर नवाया।

उसने प्रह्लाद को गोद में उठाकर कहा—'पुत्र ! वर मांग।'

प्रह्लाद ने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्, मुझे यही वर दीजिए कि आप की भक्ति मेरे मन में रहे और मेरे पिता का अपराध क्षमा कर उन्हें मुक्ति मिले।'

नृसिंह ने कहा—'ऐसा ही होगा। अब तुम सिंहासन पर बैठ धर्म-पूर्वक राज्य करो।'

प्रह्लाद ने भक्ति-पूर्वक उन्हें प्रणाम किया। नृसिंहजी आशीर्वाद दे अर्न्तध्यान हो गए। प्रह्लाद राजा बनकर धर्म-राज्य करने लगे।

उत्तंक

प्राचीन काल में अपोद-पुत्र धौम्य के शिष्य वेद बड़े भारी ऋषि प्रसिद्ध हुए। उत्तङ्क उन्हीं का शिष्य था। उसने भली-भांति गुरु-सेवा करके समस्त विद्याओं का अध्ययन किया। जब यह समस्त वेद-शास्त्रों में पारंगत हो गया, तब गुरुजी ने उसे घर जाने की आज्ञा दी। इस पर उसने हाथ जोड़कर गुरुजी से कहा—'महाराज, मुझसे कुछ गुरु-दक्षिणा लीजिये।'



गुरुजी ने कहा—'पुत्र! हम तो तेरी सेवा से ही प्रसन्न और संतुष्ट हैं, परन्तु तेरी यदि यही इच्छा है तो जाकर गुरु-माता से कह। उन्हें जो कुछ इच्छा हो उसकी पूर्ति कर। इसी से हम संतुष्ट हो जायेंगे।'

इस पर उत्तङ्क ने गुरु-पत्नी के पास जा हाथ जोड़ कहा—'माता, गुरुजी ने मुझे स्नातक बनाकर घर जाने की आज्ञा दी है और कहा है कि गुरु-दक्षिणा में जो माता चाहें वही लाकर उन्हें सन्तुष्ट करो। मैं

सेवा में आया हूं, आप कहिए कि मैं आपकी क्या इच्छा पूरी करूं ?'

गुरु-पत्नी ने उत्तङ्क की बात सुनकर कहा—'तेरी यदि यही इच्छा है तो मुझे वे कुण्डल ला दे जो पौष्प राजा की रानी पहनती हैं। आज से चौथे दिन त्यौहार है। उस दिन वही कुण्डल पहनकर मैं ब्राह्मणों को अन्न परोसना चाहती हूं। जा, यह काम कर इसमें भूल हुई तो तेरा अनिष्ट होगा।'

गुरु-माता की यह आज्ञा पाते ही उत्तङ्क चल दिया। रास्ते में उसे एक बड़ा भारी बैल मिला, उस पर एक दीर्घकाय आदमी बैठा था। उसने उत्तङ्क से कहा—'अरे, उत्तङ्क! तू इस बैल का गोबर खा ले।'

उत्तङ्क ने कहा—'वाह, भला मैं ब्राह्मण का बालक बैल का गोबर क्यों खाऊं ?'

इस पर बैल के सवार ने कहा—'अरे, विचार न कर, तेरे गुरु ने भी इसका गोबर खाया है, जल्दी कर।'

उत्तङ्क ने कहा—'गुरुजी ने खाया है तो अच्छी बात है, मैं भी खाऊंगा।' यह कहकर उसने जल्दी-जल्दी बैल का गोबर खा लिया और भागते-भागते कुल्ला कर चल दिया।



जब वह राजा पौष्प की राज-सभा में पहुंचा तो राजा ने सत्कार करके कहा—'कहिए ऋषि-कुमार, मैं तुम्हारी कौन-सी इच्छा पूर्ण करूं ?'

उत्तङ्क ने कहा—'मैं गुरु-दक्षिणा के लिए आपकी रानी के कुण्डलों की याचना करता हूं, वे आप मुझे दीजिए।

राजा ने कहा—'आप रनिवास में चले जाइये। वहां आप रानी से ही कुण्डल मांग लीजिए।'

परन्तु जब राज-महल में जाकर उत्तङ्क ने रानी को नहीं देखा तो उसने लौटकर राजा से कहा—'वहां तो रानी हैं ही नहीं। आप ने मुझसे झूठ क्यों बोला ?'

राजा ने कहा—'मैंने झूठ नहीं बोला। आप उच्छिष्ट-मुख और अपवित्र हैं, इससे पतिव्रता रानी आप को नहीं दीख पाई हैं। पतिव्रता स्त्री को अपवित्र पुरुष नहीं देख पाता है।'

उत्तङ्क ने कहा—'ठीक है, मैंने भागते-भागते आचमन किया था।' यह कहकर उसने पूर्वाभिमुख बैठ हाथ, पैर, मुंह धोए और तीन बार आचमन किया। इस प्रकार पवित्र होकर जब वह रनिवास में पहुंचा तो अब रानी उसे दीख पड़ीं।

रानी ने आदरपूर्वक उच्चासन पर बैठाकर कहा—'कहो ऋषिकुमार, तुम्हारी मैं क्या इच्छा पूर्ण कर सकती हूं।'

ऋषिकुमार ने कहा—'मुझे गुरु-दक्षिणा के लिए आपके कुण्डल चाहियें।'

रानी ने प्रसन्नता से कुण्डल उतारकर दे दिये और कहा—'सत्पात्र को दान देना ही उचित है। परन्तु तुम इन कुण्डलों को सावधानी से रखना क्योंकि नागराज तक्षक हमेशा इनकी ताक में रहता है।'

उत्तङ्क ने कहा—'आप चिन्ता न करें। मैं बहुत सावधानी से इन्हें ले जाऊंगा।' इतना कह, कुण्डल ले, वह राजा के पास आया और कहा—'राजन् ! मैं बहुत प्रसन्न हूं, मुझे कुण्डल मिल गये।'

राजा ने कहा—'यह तो बहुत ही प्रसन्नता की बात है। परन्तु आप जैसे पवित्र ब्रह्मचारी कठिनाई से मिलते हैं। मैं प्रार्थना करता हूं कि आप भोजन करके जाएं।'

ऋषिकुमार ने कहा—'परन्तु मुझे बहुत जल्दी है, यदि भोजन तैयार हो तो मैं भोजन कर सकता हूं।'

राजा ने कहा—'भोजन तैयार है।'

जब उत्तङ्क आसन पर बैठ गये और भोजन परोसा गया तो उसने देखा कि भोजन ठण्डा है और उसमें एक बाल भी पड़ा है। इस पर क्रुद्ध हो उतङ्क ने कहा—'तुमने अपवित्र भोजन परोसा है। इससे तुम अन्धे हो जाओगे।'

राजा ने कहा—'तुम तो अच्छे अन्न को दूषित बताते हो, इससे तुम्हें सन्तान नहीं होगी।'

उत्तङ्क ने कहा—'वाह, आप दूषित अन्न का दान करके भी शाप देते हैं। आप अपना अन्न देखिए तो सही।'

राजा ने देखा तो वह ठण्डा था और उसमें बाल भी था। उसने कहा—'अज्ञान से ऐसा हुआ है, इसे जिस स्त्री ने बनाया है, उसके बाल खुले थे। इसमें आप मुझ निरपराध को शाप न दें। मैं अन्धा न होऊं।'

ऋषिकुमार ने कहा—'मेरा वचन कभी मिथ्या नहीं होता, पर तुम अन्धे से फिर आंख वाले हो जाओगे। और मुझे भी जो तुमने शाप दिया है वह भी सत्य न हो।'

राजा ने कहा—'मेरा शाप तो मिथ्या हो ही नहीं सकता। ब्राह्मण का हृदय कोमल और वाणी कठोर होती है। पर क्षत्रिय की वाणी कोमल और हृदय कठोर होता है, इसलिए मैं शाप नहीं लौटा सकता—आप जाइये।'

ऋषिकुमार ने कहा—'मैंने दूषित अन्न को ही दूषित बताया है। अदूषित को नहीं, इससे तुम्हारा

गार मुझे नहीं लगेगा।' यह कह वह कुण्डल लेकर चल दिया।

मार्ग में उसने देखा, एक नंगा साधू उसके पीछे लगा है। वह कभी दीख पड़ता है और कभी छिप जाता है। आगे चलकर नदी किनारे वह कुण्डलों को भूमि पर रखकर स्नान-सन्ध्या करने बैठ गया। अवसर पा वह नंगा साधू कुण्डल उठाकर भाग गया।

संध्या-वंदन से निवृत्त होकर उत्तङ्क उसके पीछे भागा। भागते-भागते उसने साधू को पकड़ लिया। पकड़ते ही वह अपना वह रूप त्याग सर्प हो गया और फुफकारकर उसने कहा—'मैं तक्षक हूं।'

इतना कह वह भूमि में घुस गया। भूमि में घुसकर तक्षक नागलोक में जा पहुंचा। उत्तङ्क भी अपनी लाठी से उस बिल को खोदने लगा। परन्तु खोद नहीं सका। थककर दुखी हो बैठा रहा।

इन्द्र ने जब उसे दुखी देखा तो अपने वज्र को भेजा। वज्र ने उसकी लाठी में प्रविष्ट होकर आनन-फानन बिल को खोद डाला। उत्तङ्क उस बिल में घुस गया और नागलोक में पहुंच गया।

नागलोक में पहुंचकर उसने बड़े-बड़े महल, बाग और नगर देखे। नागलोक की शोभा देखकर उत्तङ्क आश्चर्यचकित रह गया। उसने देखा—नागों का राजा ऐरावत है, जो मेघों की वृष्टि के समान बाण वर्षा करता है। सुन्दर नागगण भांति-भांति के कुण्डल पहिने घूम रहे हैं। उसने कुण्डलों की प्राप्ति के लिए बहुत चेष्टा की। नागों की तथा तक्षक की स्तुति की, पर उसे कुण्डल नहीं मिले। तब उसे बड़ी चिन्ता हुई। अचानक उसने क्या देखा, कि शौभन बेना (कपड़े बुनने के यन्त्र) पर दो स्त्रियां कपड़े बुन रही हैं। उसमें काले और सफेद तार लगे हैं। छह कुमार बारह आरे वाले चरखे को चला रहे हैं। पास ही एक सुन्दर घोड़ा और एक पुरुष भी खड़ा है। उसने उन सबकी भी स्तुति की परन्तु उसका काम सिद्ध नहीं हुआ। कुण्डल उसे नहीं मिले।

विवश हो उसने देवराज इन्द्र का स्मरण किया। इस पर घोड़े के पास खड़ा हुआ वह पुरुष बोला—'अरे, आयुष्मन् ! तू क्या चाहता है ? कह।'

उत्तङ्क ने कहा—'मुझे कुण्डल मिल जाएं।'

उस पुरुष ने कहा—'इस घोड़े की गुदा में फूंक मार।'

उत्तङ्क ने ऐसा ही किया। फूंक मारते ही उसके सब स्रोतों से धुआं और आग की लपटें निकलने लगीं। उस धुएं से नागलोक भर गया। तब घबराया हुआ तक्षक कुण्डल लेकर आया और उत्तङ्क से कहा—'आप अपने कुण्डल ले जाइये और इस ज्वाला से नागलोक को बचाइये।'

उत्तङ्क कुण्डल पाकर बहुत प्रसन्न हुआ।

अब वह इस चिन्ता में पड़ा कि घर जल्दी कैसे पहुंचे, क्योंकि उसी दिन वह पर्व का दिन था। उस पुरुष ने उत्तङ्क के मन की बात ताड़कर कहा—'तुम इसी घोड़े पर सवार हो जाओ। यह तुम्हें अभी गुरुकुल में पहुंचा देगा।'

बस, उत्तङ्क तुरन्त घोड़े पर सवार हो गया और क्षण-भर में गुरुकुल जा पहुंचा।

गुरुआनीजी स्नान कर चुकी थीं और उन्हें देर हो रही थी। वे क्रुद्ध होकर उत्तङ्क को शाप देने वाली ही थीं कि उत्तङ्क आ पहुंचा और कुण्डल गुरुआनीजी के आगे धर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

इस पर प्रसन्न होकर गुरुआनीजी ने उसे आशीर्वाद दिया। गुरुजी भी बहुत प्रसन्न हुए और देर होने का कारण पूछा।

उत्तङ्क ने सब हाल ब्यौरेवार कहा और पूछा 'महाराज, मार्ग में जो बैल मिला वह कौन था ? और उसका पुरुष कौन था ? उसने मुझे उसका गोबर क्यों खिलाया था ? और नागलोक में दो स्त्रियां कपड़ा

बुन रही थीं, वे कौन थीं ? उनके वे काले और सफेद तन्तु क्या थे ? उस चरखे में बारह आरे क्या थे ? और जो छह कुमार उसे चला रहे थे वह कौन थे ? वह विशाल घोड़ा और पुरुष कौन था ?'

गुरुजी ने कहा—'मार्ग में जो बैल तैंने देखा, वह ऐरावत नागराज था और जो इस पर पुरुष सवार था वह इन्द्र था। तूने जो उसका गोबर खाया वह अमृत था। इसी से तू नागलोक में मरा नहीं। वे दोनों स्त्रियां धाता और विधाता; अर्थात् चिति और माया थीं। जो काले और सफेद तन्तु थे वे रात और दिन थे। जो बारह आरों का चक्र था, जिसे छह कुमार चला रहे थे, वे छह ऋतु और चक्र का सम्वत्सर था। जो पुरुष घोड़े के पास था वह इन्द्र था और वह घोड़ा अग्नि था।

'इन्द्र मेरा मित्र है। इसी से उसने तेरी सहायता की। बिना उनकी सहायता के तू कुण्डल प्राप्त नहीं कर सकता था। अब तू जाकर आनन्द से रह। तेरा कल्याण हो, मैं तुझे आशीर्वाद देता हूं ?'

यह सुनकर उत्तङ्क ने गुरु को प्रणाम किया और चला गया।

कुणाल

सम्राट् अशोक ने प्रथम अपनी तलवार से और फिर अपनी दिव्य-दया से पृथ्वी के महान् पुरुषों में अपना नाम लिखाया है। वे अपने युग में समस्त भारतवर्ष के सम्राट् थे। इन्हीं के पुत्र राजकुमार कुणाल थे जो अत्यन्त रूपवान और सुशील थे। बाल्यकाल में ही कंचना नाम की एक सुन्दरी कन्या से उनका विवाह कर दिया गया था। दोनों अपने विनोद और उल्लासमय जीवन से राजमहल को आनन्दित करते थे।

सम्राट् कुणाल को बहुत प्यार करते थे और वे कभी उसे आंखों की ओट न होने देते थे। सम्राट् की छोटी महिषी तिष्यरक्षिता कुणाल पर मोहित थी। एक बार उसने कुणाल को एकान्त में पाकर उससे अपनी इच्छा प्रकट की, पर कुणाल ने विनयावनत होकर कहा—'आप मेरी माता हैं। मैं आपकी ओर देख भी नहीं सकता।'

महारानी तिष्यरक्षिता ने रूप और काम के वशीभूत हो कहा—'कुमार! एक बार मेरी ओर तो देखो, मेरा कैसा रूप-यौवन है!'

परन्तु कुणाल ने वही जवाब दिया। क्रुद्ध होकर तिष्यरक्षिता ने कहा—'अच्छी बात है। तुमने जिन आंखों से मेरा अपमान किया है, उन्हें समय आने पर नष्ट कर दिया जायेगा।' वह क्रुद्ध सर्पिणी की भांति फुंकारती हुई चली गई। अवसर पाकर उसने कुणाल को महाराज से कहकर तक्षशिला भिजवा दिया। वहां प्रजा ने विद्रोह किया था। पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर कुणाल तक्षशिला को चल दिये। विद्रोह को दमन करके पंजाब का शासन करने लगे। कंचना उनके साथ थी।

२

सम्राट् अशोक रोगी हुए। बड़े-बड़े वैद्य यत्न करके हार गए पर महाराज को कोई लाभ न हुआ। उनके पेट में कृमि हो गये थे और सिर में बहुत पीड़ा रहती थी। धीरे-धीरे सम्राट् को जीवन से निराशा होने लगी।

तिष्यरक्षिता बड़ी बुद्धिमती थी। उसने आज्ञा दी कि राज्य में कोई ऐसा ही रोगी हो तो उसे लाओ, बहुत खोज-ढूंढ पर एक कुम्हार मिला। जिसे वही रोग था जो सम्राट् को था। महारानी ने उसका पेट चिरवा डाला। उसकी आंतों में बहुत से कीड़े निकले। रानी ने उन्हें भिन्न-भिन्न औषधियों में डाला, पर वे न मरे। जब वह लहसुन के अर्क में डाले गये तो मर गये। इस आविष्कार से रानी बड़ी प्रसन्न हुई और सम्राट् से कहा—'यदि मैं आपको आरोग्य कर दूं तो आप मुझे क्या देंगे।'

सम्राट् ने कहा—'तुम्हारे लिए मेरे पास अदेय क्या है ! सारे साम्राज्य का अधिपति मैं तुम्हारे [illegible] हूं। तुम्हें क्या चाहिए ?'

रानी ने कहा—'और कुछ नहीं, सिर्फ एक दिन का राज्य-शासन चाहिए।'

सम्राट् ने हंसकर कहा—'जब तुम्हारी इच्छा हो, एक दिन राज्य-शासन कर सकती हो।'

रानी ने सम्राट् को लहसुन का अर्क देना शुरू किया। इससे थोड़े ही दिन में सम्राट् के पेट के [illegible]ड़े मर गये और उनके सिर-दर्द का रोग भी जाता रहा। थोड़े ही दिन में वे बलवान् भी हो गये।

एक दिन रानी ने अवसर पा सम्राट् को उनकी प्रतिज्ञा की याद दिलाई और राजमुहर मांगी। सम्राट् ने उसे एक दिन के लिए समस्त भारत का साम्राज्य-संचालन का भार दे दिया और राज की मुहर भी दे दी।

समस्त भारत का साम्राज्य पाकर रानी ने सिर्फ एक आज्ञा-पत्र तक्षशिला के हाकिम के नाम निकाला। जिसमें लिखा था कि कुणाल की आंखें निकालकर उसे राज्य से निकाल दो। आज्ञा-पत्र तक्षशिला पहुंचा तो वहां का अधिकारी बहुत चिन्तित हुआ, उसे आज्ञा-पत्र पर सन्देह हुआ। वह समझ ही न सका कि कैसे सम्राट् अपने पुत्र के लिए यह भयानक आज्ञा दे सकते हैं। उसने सन्देह की निवृत्ति के लिए सम्राट् को एक पत्र लिखा और कुणाल से भी इसकी चर्चा की।

कुणाल ने आज्ञा-पत्र को पढ़कर कहा—'राजमुहर को मैं पहचानता हूं। आप राजाज्ञा का पालन कीजिए।'

परन्तु हाकिम ने कहा—'कुमार ! भला मैं कैसे इस निर्दय काम को कर सकता हूं। मैं राजद्रोह करता हूं, आप मुझे दण्ड दीजिये।'

कुणाल ने कहा—'नहीं, नहीं, राजाज्ञा का उल्लंघन नहीं हो सकता। मैं सम्राट् और पिता दोनों की आज्ञा मानकर अपनी आंखें स्वयं निकाल देता हूं।' यह कहकर कुमार ने विशेष साहस से अपनी आंखें निकाल डालीं और अन्धा हो गया।

कंचना ने सुना तो पछाड़ खाकर धरती पर गिर पड़ी, परन्तु कुणाल ने उसे धैर्य बंधाया और कहा—'अब मुझे राज्य से बाहर जाना चाहिए।' बहुत समझाने पर भी कंचना ने कुणाल का साथ न छोड़ा। उसने कहा—'मृत्यु ही हमें अलग कर सकती है। चलो, हम इस पापी राज्य से निकल चलें।' और वे दोनों राजमहल से निकल गये। कंचना ने अन्धे राजकुमार का हाथ पकड़ा। लोग करुणा से उन्हें देख रहे थे, और वे चुपचाप सब वैभव त्याग कर पैदल जा रहे थे।

आज्ञापालन की सूचना शासक ने भेज दी थी। जिसे महारानी ने ऊपर-ही-ऊपर ले लिया और यह बात उड़ा दी कि कुणाल और कंचना भिक्षु हो गये। सम्राट् को प्रिय-पुत्र के वियोग का दुःख तो हुआ, परन्तु उन्होंने यह समझकर कि पुत्र ने धर्म-मार्ग का अनुसरण किया है, सन्तोष कर लिया।

दोनों प्राणी देश-विदेश घूमते फिरे। दोनों गान-विद्या में प्रवीण थे। रूप भी साधारण न था, जहां जाते, भीड़ लग जाती। उनके तेज और लक्षणों से उनका राजवंशी होना प्रकट होता था। पर वे किसी को अपना परिचय नहीं देते थे।

धीरे-धीरे पन्द्रह वर्ष बीत गये। वे समस्त दक्षिण भारत का भ्रमण कर चुके थे। उनकी वासना नष्ट चुकी थी, वे संसार से विरत हो चुके थे। घूमते-घूमते वे बंगाल में आये। और फिर एक दिन बीस वर्ष बाद सन्ध्या समय पटना में आ पहुंचे। एक अतिथिशाला में उन्होंने डेरा डाला और नगर में

गा-गाकर भीख मांगने लगे। उनका रूप-रंग सब बदल चुका था, पर उनकी आकृति में ऐसी मनोहरता थी और उनका कण्ठ-स्वर ऐसा मधुर था जिसे सुनकर लोग मोहित हो जाते थे। सम्राट् की गजशाला का



अध्यक्ष गान-विद्या का बड़ा प्रेमी था। उसने उनका गाना सुनकर कहा—

'कौन हो, भाई ?'

'बटोही हैं।'

'कहां रहते हो ?'

'आज यहां, कल वहां।'

'कहां से आ रहे हो ?'

'यों ही घूमते-फिरते हैं।'

उसने उन्हें डेरे में सोने की जगह दी और दया करके भोजन भी दिया। रात-भर वे आराम से सोये। प्रभात के समय कुणाल ने भैरवी की एक तान ली। सम्राट् जाग चुके थे। वह तान उनके कान में पड़ी। उन्हें ख़याल आया कि कुणाल ऐसा ही गाता था। 'यह कौन गायक है ?' उन्होंने द्वारपाल को भेजकर गायक को तुरन्त हाजिर करने की आज्ञा दी।

दोनों ने सम्राट् के सामने आकर उनकी आज्ञा से गाना गाया।

सम्राट् ने पूछा—'कौन हो ?'

'ग़रीब भिखारी हैं, महाराज ! लोगों को गाना सुनाते हैं। जो कोई खाने को देता है उसी में निर्वाह करते हैं।' बात कहते-कहते कुणाल का गला भर आया। महाराज को सन्देह हुआ। उन्होंने कहा—'नहीं, नहीं, सच कहो, तुम कौन हो ?'

कुणाल अब अपने को रोक न सका—'मैं कुणाल हूं।' कहकर वह महाराज के पैरों पर गिर गया।

सम्राट् ने उसे उठाकर छाती से लगाकर कहा—'अरे, पुत्र ! तुम्हारी यह दशा कैसे हुई ?'

तब कुणाल ने सब बातें कह सुनाईं। दरबारी धन्य-धन्य कहने लगे। महाराजा अविरल आंसू बहाते रहे, पर तुरन्त ही क्रुद्ध होकर उन्होंने लाल-लाल आंखों से मन्त्री की ओर देखकर कहा—'किसने आज्ञा-पत्र लिखा था ?'

सब पुरानी बातों की खोज हुई। रानी ने अपना दोष स्वीकार कर लिया। सम्राट् ने तत्काल आज्ञा दी—'रानी की आंखें निकाल ली जाएं और फिर उसके शरीर के एक-एक अंग काटे जाएं।'

दरबार में सन्नाटा था। सम्राट् से कुणाल ने कटिबद्ध होकर कहा—'महाराज, सेवक की एक प्रार्थना है।'

सम्राट् ने कहा—'कहो, पुत्र ! तुम्हारी प्रार्थना अवश्य पूर्ण होगी।'

'महाराज ! पिताजी ! माता को क्षमा कर दीजिये। संसार के नेत्र खोकर मैंने दिव्य-दृष्टि पाई है। मैं माता का बहुत उपकृत हूं।' सभासद धन्य-धन्य कह उठे और कुणाल की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। सम्राट् ने पुत्र की प्रार्थना स्वीकार की, पर फिर उन्हें राजपाट से विरक्ति हो गयी और उन्होंने साम्राज्य कुणाल को सौंप संन्यास ग्रहण कर लिया।

चन्द्रहास

बहुत दिनों की बात है। केरल देश में मेधावी नामक एक धर्मात्मा राजा का राज्य था। उनका एक इकलौता बेटा था, उसका नाम चन्द्रहास था। जब चन्द्रहास बहुत छोटा था, उसके पिता केरल-नरेश एक युद्ध में मार डाले गये और उसकी माता अपने पति के साथ सती हो गयी। राज्य पर शत्रुओं का अधिकार हो गया। इस मुसीबत में चन्द्रहास की धाय कुमार को चुपके से निकालकर ले भागी और कुन्तलपुर में रहने लगी। उसने तीन वर्ष तक मेहनत-मजदूरी करके कुमार का लालन-पालन किया। इसके बाद वह भी एक दिन मर गयी।

चन्द्रहास निपट अनाथ और असहाय हो गया। पास-पड़ोस के स्त्री-पुरुष अब उस अनाथ बालक को खाने-पीने को दे देते। यह किसी को पता न था कि वह केरल का युवराज है। इसी तरह उसे कुन्तलपुर में रहते-रहते कुछ काल बीत गया।

कुन्तलपुर के राजा की पुत्री बड़ी सुन्दरी थी। उसका नाम चम्पक मालिनी था। राजा के गुरु गालव ऋषि थे। उनके सत्संग से राजा की मति धर्म में रहती थी। वे सदा पूजा-पाठ में लगे रहते थे। राज-काज मन्त्री के हाथ में था। मन्त्री का नाम धृष्टबुद्धि था। वही कुन्तलपुर का कर्ता-धर्ता था। उसने जोड़-बटोरकर बड़ी भारी सम्पत्ति जमा कर ली थी। उसके दो पुत्र और एक पुत्री थी। पुत्रों का नाम मदन और अमल था। पुत्री का नाम विषया था। विषया परम सुन्दरी थी। मदन और अमल दोनों राज-काज में पिता की पूरी मदद करते थे। मदन धर्मात्मा था, पर धृष्टबुद्धि तो दिन-रात राजनीति के दाव-पेंच में ही लगा रहता था। संयोगवश मदन की मित्रता चन्द्रहास से हो गयी। और चन्द्रहास मदन के पास आने-जाने लगा।

जब कुछ दिन इस प्रकार बीत गए तो किसी तरह मन्त्री को पता लग गया कि यह केरल का राजकुमार है। मंत्री धृष्टबुद्धि का केरल-नरेश की मृत्यु में बहुत कुछ हाथ था। वह चन्द्रहास को मार डालने का कोई अवसर ताकने लगा। एक दिन अवसर पाकर वह चन्द्रहास को महल के एकांत स्थान में ले गया। वहां वधिक को बुलाकर चन्द्रहास को उसके सुपुर्द कर दिया और कहा—'आज ही काम बनाकर निशानी लाओ और पूरा इनाम पाओ।' जल्लाद चन्द्रहास को लेकर चुपचाप वहां से चल दिया।

जब चन्द्रहास को पता चला कि यह मुझे मार डालने के लिए लाया है, तो उसने कहा—'भाई मुझ अनाथ बालक को मारकर तुझे क्या मिलेगा। जो थोड़ा धन मिल भी गया, उससे तुझे क्या सुख मिलेगा ?'

जल्लाद को उस पर दया आ गयी। चन्द्रहास के एक पैर में छह अंगुलियां थीं। बस उसने छठीं

उंगली काट ली और चन्द्रहास को वहीं छोड़ मन्त्री के पास आ गया और कटी उंगली दिखा दी। उसे देखकर धृष्टबुद्धि प्रसन्न और सन्तुष्ट हो गया।



बालक चन्द्रहास उंगली कटने के दर्द से कराहता हुआ वहीं जंगल में पड़ा रहा। दैवयोग से वहां चन्दनपुर का राजा शिकार खेलते हुए आ निकला। राजा के कोई पुत्र न था। उसने बालक चन्द्रहास को अपनी गोद में उठा लिया और उससे इस दुर्दशा का कारण पूछा तो चन्द्रहास ने सब हाल बता दिया। परन्तु वह अपने माता-पिता के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता था, इससे कुछ न बता सका। फिर भी उसके

शरीर में राज-चिह्न देख राजा ने समझ लिया कि यह अनाथ किसी बड़े वंश का कुमार है। वह उसे अपनी राजधानी में ले आया और पुत्र की भांति पालने लगा।

चन्द्रहास यहां रहकर बड़े आनन्द के साथ राजकुमार की भांति रहने लगा। कुछ दिन बाद राजा ने उसे युवराज घोषित कर दिया। वह बड़ा मेधावी था, इसलिए शीघ्र ही सब विद्याओं में निपुण हो गया। और अपने सद्‌गुणों तथा विनम्र स्वभाव से सारे राजपरिवार का और प्रजा का प्रिय बन गया। युवा होने पर वह बड़ा बांका वीर निकला। उसने आस-पास के सब शत्रुओं को भी परास्त कर डाला।

चन्दनपुर की रियासत कुन्तलपुर के अधीन थी और वहां का राजा दस हज़ार मोहर सालाना कर दिया करता था। पर इस बार चन्द्रहास ने दस हजार के अलावा और बहुत-सा धन-माल कुन्तलपुर को भेजा। धीरे-धीरे चन्दनपुर के ऐश्वर्य-वृद्धि का समाचार कुन्तलपुर पहुंचा तो धृष्टबुद्धि राज्य की सब व्यवस्था देखने के लिए बहाना करके चन्दनपुर पहुंचा।

राजा और कुमार ने मन्त्री का धूमधाम से स्वागत किया। पर धृष्टबुद्धि ने चन्द्रहास को तुरन्त ही पहचान लिया। और उसे देखकर वह जलकर खाक हो गया। उसने चन्द्रहास को मरवा डालने की एक युक्ति निकाली और अपने पुत्र मदन को एक पत्र लिखा और उसे चन्द्रहास को देकर कहा—'यह पत्र बहुत महत्त्वपूर्ण है, इससे दोनों राज्यों की भलाई होगी। अतः तुम स्वयं जाकर मेरे पुत्र मदन को यह पत्र देना—खबरदार, पत्र रास्ते में खुलने न ही पाये, और न किसी दूसरे के हाथ पड़ने पाये।

मन्त्री की आज्ञा होने पर चन्द्रहास तुरन्त घोड़े पर सवार हो चल दिया। कुन्तलपुर वहां से चौबीस कोस था। पहुंचते-पहुंचते दिन ढल गया। जब नगर के निकट पहुंचा, तब उसने सोचा—थोड़ा विश्राम कर लूं, फिर नगर में चलूं। यह सोचकर वह एक सुन्दर बाग में घुस गया। यह बाग राजा का था। वहां उसने स्वयं हाथ-मुंह धोकर जल पिया, घोड़े को भीं पिलाया। फिर रास्ते की थकान मिटाने के लिए घोड़े को एक ओर बांध वृक्ष की छाया में लेट गया। थका तो था ही, तुरन्त नींद आ गयी, और वह मीठी नींद सो गया।

दैवयोग से उसी समय मन्त्री-पुत्री विषया सखियों सहित वहां घूमने आई। सखियां इधर-उधर रह गईं, और विषया उनसे भटककर वहां आ पहुंची, जहां कुमार चन्द्रहास सो रहा था। उस सुन्दर कुमार को सोता देख वह मोहित हो गयी। उसने देखा कि एक पत्र उसकी जेब में चमक रहा है। कौतूहलवश उस पर उसने मदन का पता तथा पिता के हस्ताक्षर देख, पत्र धीरे से निकाल लिया और खोलकर पढ़ा। पत्र में लिखा था कि 'इसे तुरन्त विष दे देना—कुल-शील का विचार न करना।' पत्र पढ़ विषया को बड़ी चिन्ता हुई। उसने विष की जगह विषया बना दिया और पत्र उसी भांति आम के गोंद से बंद कर वहीं रख दिया और चलकर सखियों में मिल गयी। कुछ देर में कुमार जागकर चल खड़े हुए। नगर में जाकर उसने पत्र मदन को दिया। पत्र पढ़कर और पुराने मित्र को पाकर मदन बहुत खुश हुआ और उसी क्षण गोधूलि लग्न में विषया का विवाह चन्द्रहास से कर दिया। कन्यादान के समय स्वयं कुन्तलपुर नरेश पधारे। वे भी चन्द्रहास पर मोहित हो गये। उन्होंने सोचा—पुत्री चम्पक मालिनी के लिए इससे उत्तम वर और कौन मिलेगा। इसी को राजकुमारी ब्याहकर राज्य भी इसे ही दे देना चाहिये।

दो-चार दिन बाद मंत्री ने लौटकर देखा कि उसका सोचा हुआ सब चौपट हो गया है, तो वह अत्यन्त क्षुब्ध हुआ। पर मन का कुभाव किसी पर प्रकट नहीं किया। उसने निश्चय किया कि कन्या चाहे विधवा हो जाय पर इस शत्रु को अवश्य मारना होगा। उसने जल्लाद को बुलाकर कहा—'देखो आज सन्ध्या के बाद नगर के बाहर चामुण्डा के मंदिर में जो कोई जाय, उसी का सिर काट लेना।' जल्लाद ने

जो आज्ञा' कहकर अपनी राह ली।

सन्ध्या के समय उसने चन्द्रहास से हंसकर कहा—'चामुण्डा हमारी कुलदेवी है, इससे आज सन्ध्या के बाद वहां जाकर तुम उसका पूजन कर आना।'

सरल कुमार ने स्वसुर की आज्ञा का पालन किया और पूजन-सामग्री लेकर चामुण्डा की मूर्ति पूजने को जाने की तैयारी करने लगा।

वह जाने ही वाला था कि मदन ने आकर कहा—'तुम्हें अभी महाराज बुला रहे हैं। महल में तुम्हें अभी चलना होगा।'

चन्द्रहास ने कहा—'यह तो बड़ी मुश्किल है। मुझे तो अभी चामुण्डा की पूजा करने जाना है।'

मदन ने कहा—'चामुण्डा की पूजा मैं कर आता हूं, तुम महाराज की सेवा में जाओ।'

यह कहकर चन्द्रहास को तो मदन ने राजमहल में भेज दिया और स्वयं चामुण्डा के मंदिर में जा पहुंचा। वहां घातक जल्लाद ने उसका सिर काट लिया।

इधर राजा ने उसी रात चन्द्रहास को अपनी पुत्री चम्पक मालिनी ब्याह दी और उससे कहा—'यह राजपाट भी तुम्हीं संभालो, हम तो अब वन में जाकर तपस्या करेंगे।'

प्रातःकाल धृष्टबुद्धि ने जब पुत्र की मृत्यु का और चन्द्रहास के राजा होने का हाल सुना, तो वह 'हाय' करके रह गया। और उसने पुत्र की लाश पर जाकर तलवार से आत्महत्या कर ली। इस प्रकार चन्द्रहास उनकी भी सम्पत्ति का स्वामी बना और आनन्द से राज्य करने लगा।

गरुड़जी

सतयुग की बात है। दक्ष प्रजापति की दो कन्यायें थीं। एक कद्रु, दूसरी वनिता। दोनों अत्यन्त सुन्दरी थीं। प्रजापति ने दोनों का विवाह महात्मा कश्यप से कर दिया। कश्यप ने उनकी सेवा से प्रसन्न होकर कहा—'यथेच्छ वर मांगो।'

कद्रु ने तेजस्वी एक हजार नाग पुत्र रूप में मांगे और वनिता ने कहा मुझे ऐसे दो पुत्र चाहिएं जो तेज, विक्रम और शरीर में कद्रु के पुत्रों से भी बढ़कर हों।

कश्यप ने दोनों को यथेच्छ वर देकर सन्तुष्ट किया। वर पाकर दोनों अत्यन्त प्रसन्न हुईं।

समय बीतने पर कद्रु ने एक हजार अंडे दिये और वनिता ने दो अण्डे दिये। दासियों ने उन अण्डों को गर्म बर्तनों में रख दिया।

पांच सौ वर्ष बाद कद्रु के नाग पुत्र निकले पर वनिता के दो अण्डों से फिर भी बच्चे न निकले। कुछ दिन और प्रतीक्षा कर अधीर होकर वनिता ने एक अण्डा तोड़ डाला। उसने देखा उसमें पुत्र है, वह आधा तो पक गया और आधा कच्चा है। पुत्र क्रोध में भरकर अपनी माता को श्राप दिया—'तूने पुत्र लोभ से मेरे साथ ऐसा किया, इससे तू पांच सौ वर्ष तक कद्रु की दासी रहेगी। परन्तु जो तू इस दूसरे अण्डे को इस तरह तोड़कर अङ्ग-भङ्ग न करेगी तो इससे जो पुत्र होगा वह तुझे श्राप से छुड़ावेगा। इसलिए तू धीरता से उसकी प्रतीक्षा कर।'

इतना कहकर वह आकाश में उड़ गया और सूर्य का सारथी हो गया।

उसके बाद एक बार ऐसा हुआ कि उन दोनों बहिनों ने अपने पास से निकलते हुए उच्चश्श्रवा अश्व को देखा। उसे देखकर कद्रु ने वनिता से कहा—'कहो बहिन ! यह घोड़ा किस रंग का है।'

वनिता ने कहा—'सफेद है।'

कद्रु ने कहा—'परन्तु पूंछ काली है।'

इस पर दोनों ने विवाद किया और शर्त लगाई कि जिसकी बात सच होगी, दूसरी उसकी पांच सौ वर्ष तक दासी रहेगी। यह तय हुआ कि कल इसे देखकर निर्णय होगा। परन्तु वास्तव में घोड़े की पूंछ काली न थी, पर कद्रु ने कपट जाल रचा और अपने पुत्रों को, जो नाग थे, आज्ञा दी—'तुम काले बाल बनकर इसकी दुम से लिपट जाओ। जो मेरी आज्ञा को न मानेगा वह सर्पयज्ञ में भस्म होगा।'

दूसरे दिन प्रातःकाल दोनों बहिनें समुद्र पार घोड़े के पास पहुंचीं तो देखा कि उसकी पूंछ के बाल काले थे। पूंछ के बाल काले देखकर शर्त के अनुसार कद्रु ने वनिता को अपनी दासी बना लिया। इस प्रकार वनिता दुखित होकर दासी का काम करने लगी।

कुछ दिन बाद दूसरे अण्डे को तोड़कर महा तेजस्वी गरुड़ निकल आये। उत्पन्न होते ही क्षुधा = ंड़ित हो आकाश में घूमने लगे। इनका रूप पक्षी का था परन्तु इनमें इच्छानुसार रूप, गमन और ्ञ्न थी। उनकी आंखों में अग्नि के समान तेज था। उसे देखकर देवतागण अग्नि के पास जाकर कहने —'इस पक्षी के तेज से तो हम सब भस्म हो जायेंगे। इससे हमारी रक्षा कीजिये।'

अग्नि ने कहा—'यह महात्मा कश्यप का पुत्र गरुड़ है और दैत्यों तथा नागों का शत्रु और देवताओं का मित्र है। इससे भय करने की आवश्यकता नहीं है।'

एक दिन वनिता अपने पुत्र गरुड़ के पास बैठी थी। उसे चिढ़ाने और अपमान करने की इच्छा ने कद्रु ने उसे बुलाकर कहा—'तुम मुझे अपनी पीठ पर बैठाकर समुद्र की खाड़ी में, जहां नागों का निवास है. वहां ले चलो।'

लाचार वनिता ने कद्रु को अपनी पीठ पर लादा और माता के कहने से गरुड़ ने भी उसके सर्पों को अपनी पीठ पर चढ़ा लिया। इससे गरुड़ को बड़ा क्रोध आया। वह उड़कर सूर्य के निकट चला गया, जिससे सब नाग जलकर बेहोश हो गये। यह देख कद्रु ने इन्द्र की प्रार्थना की, जिससे उसने वर्षा करके नागों को सन्तुष्ट किया। इस प्रकार नाग और उसकी माता उस द्वीप में जा पहुंचे, जहां नाग रहते थे। सब नाग वहां मिलकर जब खूब विहार कर चुके तब गरुड़ से बोले—'अब तू हमें किसी और सुन्दर लोक में ले चल, जहां हम अच्छी तरह विहार करें।'

यह सुन गरुड़जी बड़ी चिन्ता में पड़े और अपनी माता से कहने लगे—'क्या कारण है जो मुझे सर्पों की आज्ञा पालन करनी पड़ती है।'

वनिता ने कहा—'पुत्र! मैं सौत से हारकर उसकी दासी बन गयी हूं। उसने सर्पों से छल कराकर दांव जीत लिया है।'

यह सुनकर दुखी होकर गरुड़ ने सर्पों से कहा—'क्या लेकर तुम हमें दासत्व से छुटकारा दिला सकते हो?'

सर्पों ने कहा—'तुम ला सको तो हमें अमृत ला दो, तब तुम्हारा इस दास-भाव से छुटकारा हो सकता है।'

यह सुनकर गरुड़ ने माता से कहा—'मैं अमृत लेने देवलोक जाता हूं, मुझे कुछ खाने को दो।'

वनिता ने कहा—'समुद्र के उस ओर निषाद रहते हैं। उन्हें खाकर तुम अमृत ले आओ। पर खबरदार रहना, ब्राह्मण को मत खा जाना।'

गरुड़ ने कहा—'मैं ब्राह्मण को कैसे पहचानूंगा?'

वनिता ने कहा—'तेरे कण्ठ में पहुंचकर निगलने के समय जो मछली के कांटे की तरह अटक जाय या अंगारे के समान कण्ठ को जलाने लगे और पेट में पचे नहीं, उसे तू फौरन ब्राह्मण समझ लेना। जा, तेरा कल्याण हो!'

यह सुनकर गरुड़ पंख फैलाकर आकाश में उड़ गया। वह बहुत भूखा था सो तुरन्त ही निषादों के पास जाकर उनका संहार करने लगा। और उसने पेट चीरकर निषादों का भक्षण किया। इन निषादों में एक ब्राह्मण भी अपनी पत्नी समेत गरुड़ के मुंह में चला गया। इससे उसका कण्ठ जलने लगा तो गरुड़ ने कहा—'तू निकल आ। मैं ब्राह्मण को नहीं मारता।' ब्राह्मण अपनी ब्राह्मणी के साथ बाहर निकल आया। इसके बाद गरुड़ फिर आकाश में उड़ गया।

मार्ग में गरुड़ ने अपने पिता कश्यपजी को देखा। उन्होंने पूछा—'पुत्र ! तुम कहां जा रहे हो ? कैसे हो ?'

गरुड़ ने सब हाल ब्योरेवार सुना दिया। परन्तु भोजन के विषय में कहा—'मेरे भोजन का ठीक-ठीक अभी कुछ नहीं है। अभी तो मैं अमृत लेने देवलोक जाता हूं, जिससे माता का दासी-भाव छूटे। मैंने हजारों निषादों का भक्षण किया, परन्तु मेरा पेट नहीं भरा। अब आप ही कोई भोजन बताइये जिससे भूख-प्यास मिटाकर मैं अमृत ला सकूं।'

कश्यप पुत्र की बात सुनकर बोले—'इस तालाब में कछुआ और हाथी परस्पर के द्वेष से युद्ध कर रहे हैं। यह दोनों मूर्ख—सुप्रतीत और विभावसु नामक दोनों भाई हैं, जो एक-दूसरे के शाप से हाथी और कछुआ बन गये हैं। सो इन दोनों का भक्षण कर डालो। यह कछुआ महामेघ के समान तथा हाथी महापर्वत के समान है। इन्हें भक्षण करके अमृत ले आओ।'

गरुड़जी ने पिताजी की सलाह सुनकर जो उड़ान उड़ी तो झट उस तालाब पर आए और एक पंजे में हाथी को तथा दूसरे पंजे में कछुए को पकड़ लिये और उन्हें लेकर अलम्ब तीर्थ में पहुंचे और रोहिण महावृक्ष पर बैठकर हाथी और कछुए को खाने लगे। परन्तु उनके बोझ से वृक्ष की शाखा टूट गयी। उसी शाखा में नीचे मुंह किये बालखिल्य ऋषि तप करने को लटक रहे थे। इन ऋषि को कहीं चोट न लग जाय, इस भय से गरुड़ ने दोनों पंजों में हाथी और कछुए को पकड़े हुए चोंच से वह शाखा पकड़ ली और ऋषि को कष्ट न हो, इस विचार से धीरे-धीरे उड़ने लगे। वह उन्हें लिये बहुत-सी जगहों पर उड़ते फिरे। पर उन्हें उतरने का कहीं स्थान न मिला। अन्त में वह गन्धमादन पर्वत पर पहुंचे। वहां उसने तप करते हुए अपने पिता को देखा।

कश्यप ऋषि ने जो दुर्दान्त पुत्र को इस प्रकार आते देखा तो कहा—'अरे पुत्र ! तूने यह क्या दुस्साहस किया। ये बालखिल्य ऋषि किरण पीकर तपस्या करते हैं। कहीं शाप से तुझे दग्ध न कर डालें।'

इसके बाद उन्होंने बालखिल्य ऋषि की भी बहुत स्तुति की। जिसे सुन वे शाखा को छोड़कर हिमालय पर्वत पर चले गये। तब गरुड़जी कहने लगे—'आप मुझे ऐसी जगह बताइये जहां मैं इस शाखा को डालूं। वहां कोई आदमी न हो।'

कश्यप ने उन्हें एक अगम्य गिरि कन्दरा बता दी। तब गरुड़ हाथी, कछुआ और उस शाखा के बोझ को लेकर फिर उड़ चले। वह शाखा इतनी बड़ी थी कि सौ पशुओं के चमड़े से भी नहीं बांधी जा सकती थी। जब पिता के बताए स्थान पर जाकर उस शाखा को गरुड़ ने छोड़ा तो बड़ा शब्द हुआ। पर्वत कांप गये। तब उस पर्वत की चोटी पर बैठकर गरुड़ ने उस कछुए और हाथी को खाया। तृप्त होकर वह अब अमृत लेने को उड़ा।

जब गरुड़ देवलोक के निकट पहुंचा तो वहां बड़े उत्पात होने लगे। इन्हें देख इन्द्र ने घबराकर बृहस्पति से कहा—'यह कौन शत्रु हम पर चढ़ा आ रहा है ?'

बृहस्पति ने कहा—'यह महर्षि कश्यप का पुत्र गरुड़ है जो अमृत लेने आया है। अब आप इससे अमृत की रक्षा नहीं कर सकते।'

यह सुन इन्द्र ने देवताओं को ललकारकर कहा—'खबरदार, गरुड़ अमृत न ले जाने पाए।'

बृहस्पति ने कहा—'गरुड़ महाबली है। देवता उससे युद्ध में जय नहीं पा सकते।'

फिर भी देवता अमृत को घेरकर बैठ गये। इन्द्र भी वज्र ले अमृत की रक्षा करने बैठे रहे। देवताओं ने बड़े-बड़े हथियार लिये। इतने में ही देवताओं के पास गरुड़ जा पहुंचे। अब अमृत के लिए घन-

घोर युद्ध होने लगा। गरुड़ ने देवताओं को चीर-फाड़कर घायल कर डाला और युद्ध में गरुड़ के पंखों से इतनी धूल उड़ी कि इन्द्र ने वायु को आज्ञा दी कि तुम धूल की वर्षा को दूर ले जाओ। जब वायु ने धूल को हटा दिया और अंधकार नष्ट हुआ तब देवता फिर गरुड़ पर प्रहार करने लगे। क्रोध में आकर गरुड़ जोर से गर्जने लगे और ऐसे वेग से आक्रमण करने लगे कि देवता घबराकर भाग निकले। गरुड़जी अमृत को लेकर चल दिये। यह देख अग्नि ने हजारों मुख से अमृत को ढक लिया। परन्तु गरुड़जी ने नदियों की जल-धारा से वह आग बुझा दी।

अन्त में वे अमृत का कलश लेकर चल दिये। आकाश में विष्णुजी से भेंट हुई। उन्होंने कहा—'मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूं क्योंकि तुमने अमृत स्वयं नहीं पिया। तुम वर मांगो।'

गरुड़ ने कहा—'आप मुझे अपनी ध्वजा में स्थान दीजिए। और वर दीजिए कि बिना ही अमृत पिये अजर-अमर रहूं।'

विष्णु ने कहा—'तथास्तु !'

फिर गरुड़ ने कहा—'अब आप भी मुझसे वर मांगिये।'

विष्णु ने हंसकर कहा—'अच्छी बात है, तुम मेरे वाहन बनो।' गरुड़ ने स्वीकार किया।



इसके बाद गरुड़ आगे उड़े। तब इन्द्र ने क्रोध में आकर उस पर वज्र मारा। वज्र की चोट खाकर गरुड़ ने हंसकर कहा—'मैं वज्र का और तुम्हारा सम्मान करने के लिए अपना एक पर गिरा देता हूं।'

यह देख इन्द्र ने आश्चर्य करके कहा—'हे गरुड़, तुम्हारा बल आश्चर्य-जनक है। मैं तुमसे मित्रता चाहता हूं।'

गरुड़ ने कहा—'अच्छा, मुझे भी आपसे मित्रता स्वीकार है।'

इन्द्र ने कहा—'यदि अमृत से आपका कोई काम नहीं है तो उसे मुझे लौटा दीजिए। आप नागों को यह अमृत देना चाहते हैं। इसे पीकर वे हमें कष्ट देंगे।'

गरुड़ ने कहा—'मैं तो अपने किसी मतलब से ही अमृत को लिये जा रहा हूं, पर किसी को पीने न दूंगा। इससे मैं इसे जहां रख दूं वहां से तुम उठाकर फौरन भाग आना।'

इस पर इन्द्र राजी हो गये। इतना कह गरुड़ अपनी माता के पास आए और कहा—'अरे, नागो! मैं अपने वचन के अनुसार अमृत ले आया हूं। अब आज से मेरी माता तुम्हारी दासी नहीं है। यह अमृत रखा है, तुम स्नान, मंगलाचरण करके इसका पान करो।'

यह कहकर उसने वह कलश कुशा पर रख दिया। नाग लोग स्नान आदि को चल दिये। उधर अवसर पा इन्द्र कलश उठा अपने रास्ते लगे। सर्प देखते ही रह गये और कुशा को चाटने लगे जिससे उनकी जीभ चिर गई।

इस प्रकार गरुड़ ने अपनी माता को दासीपन से मुक्त किया।

ध्रुव

महाराज मनु के पुत्र राजा उत्तानपाद के दो रानियां थीं। बड़ी रानी का नाम सुनीति और छोटी का सुरुचि था। सुनीति के बेटे का नाम ध्रुव और सुरुचि के बेटे का नाम उत्तम था। महाराज उत्तानपाद छोटी रानी को ज्यादा प्रेम करते थे। सारा अधिकार छोटी रानी के ही हाथ में था। बड़ी रानी और उसका पुत्र उपेक्षित रूप से उस घर में, छोटी रानी के आश्रित बनकर रह रहे थे। रानी तो समझदार थी। राजा को छोटी रानी के चंगुल में फंसा देखकर उस घर के अन्दर अपना स्थान समझ गयी थी, इसलिए घर-गृहस्थी के झगड़ों को छोड़ अपने दिन पूजा-पाठ में व्यतीत करती थी। वह किसी बात में दखल देना या अपने अधिकारों के लिए लड़ना-झगड़ना पसन्द न करती थी। वह बुद्धिमती थी, वह समझती थी कि जब राजा ने ही छोटी रानी के प्रेम में आसक्त होकर न्याय-अन्याय का विचार करना छोड़ दिया है, तो व्यर्थ घर में अशान्ति करने तथा अपने को और अपमानित कराने से क्या फायदा है !

ध्रुव नासमझ बालक था। वह यह सब बातें समझता न था। वह समझता था, जैसा उत्तम वैसा ही मैं। राजा जैसे उत्तम के पिता, वैसे मेरे पिता। वह हमेशा उत्तम की बराबरी किया करता था। छोटी रानी यह बर्दाश्त नहीं कर सकती थी कि वह मेरे बेटे की बराबरी करे। अक्सर वह उसे फटकार देती थी, जिससे वह मां के पास रोता हुआ जाता था। बच्चे के साथ भी छोटी रानी का यह व्यवहार देखकर मां के कलेजे पर बड़ी चोट लगती थी, किन्तु बच्चे के सामने अपना दुःख प्रकट नहीं करती थी, कि कहीं बच्चे को छोटी रानी तथा अपने पिता के प्रति विरक्ति न हो जाय। वह हमेशा उसी का दोष निकाल उसे समझा दिया करती थी। इसी प्रकार दिन बीतते जा रहे थे। छोटी रानी और उत्तम के सुख से, और बड़ी रानी और ध्रुव के दुःख से।

अब ध्रुव पहले से कुछ समझदार हो गया था। वह कुछ-कुछ अपनी मां के दुःख को समझने लगा था। वह अपनी छोटी मां के सामने बहुत चौकन्ना रहता और खयाल रखता था कि उनकी मर्जी के खिलाफ कोई काम न हो जाय जिससे वह नाराज हों।

एक दिन राजा उत्तानपाद राजसभा में अपनी गद्दी पर बैठे थे। खेलते हुए उत्तम और ध्रुव वहां आ गये। उत्तम जाकर पिता की गोद में बैठ गया। उत्तम को गोद में बैठा हुआ देख, ध्रुव का मन भी पिता की गोद में बैठने को ललचाया। छोटी रानी के क्रोध को भूल वह भी पिता की गोद में जा बैठा। इतने में सुरुचि वहां आ गयी। ध्रुव को पिता की गोद में बैठा देख उसके नेत्रों से ज्वाला निकलने लगी। उसने ध्रुव की बांह पकड़ ढकेल दिया और बोली—'यह गोद तेरे बैठने के लिए नहीं है। तेरा जन्म दूसरी माता की कोख से हुआ है। यह मेरे बच्चों के लिए है। अगर तुझे इस गोद में बैठने की आकांक्षा है, तो जा तपस्या

कर और उस जन्म में मेरी कोख से जन्म ले, तब यह गोद प्राप्त कर सकेगा। बालक बड़ा अप्रतिभ हुआ। वह इस प्रकार भाई और पिता के सामने अपने ही पिता की गोद में बैठने के अपराध में अपना और अपनी माता का इतना बड़ा अपमान सह न सका। वह अपनी मां के पास जा सिसक-सिसककर रोने लगा। मां के पूछने पर उसने सारा किस्सा कह सुनाया कि पिता की गोद में बैठने पर छोटी मां ने मेरा इस प्रकार तिरस्कार किया। इसमें मेरा क्या कसूर था? क्या वे उत्तम के समान मेरे पिता नहीं हैं? उत्तम भी तो गोद में बैठा था, उसे तो किसी ने कुछ नहीं कहा।



बेटे की बात सुनकर सुनीति अपने आंसुओं को न रोक सकी। मां-बेटे दोनों एक दूसरे से चिपक कर रोने लगे। कुछ देर रोकर जब उनका जी कुछ हल्का हुआ तो सुनीति हमेशा के समान उसी को दोषी न बना सकी। अब ध्रुव सात वर्ष का बालक हो गया था। दोष किसे कहते हैं, वह अब समझने लगा था। रानी ने भी समझा, अब उसे भुलावे में नहीं रखा जा सकता। आखिर उसे सत्य बात बतानी पड़ी। उसने कहा—'हे पुत्र! यह सत्य है, तूने पूर्व जन्म में कोई पाप किया था जिससे कि तूने मुझ अभागिनी की कोख से जन्म लिया। मैं पूर्व जन्म के पाप के कारण पति की उपेक्षिता हूं। और छोटी रानी सुरुचि को पूर्व जन्म के पुण्य के कारण पति का प्रेम और आदर मिला है। उत्तम ने सुकर्म किया था, जिससे उसने सुरुचि के पेट से जन्म लिया। इस कारण वह पिता के पूर्ण प्रेम का अधिकारी हुआ और तू उत्तम के समान ही उनका पुत्र होते हुए भी मुझ उपेक्षिता का बेटा होने के कारण उनके प्रेम का अधिकारी नहीं। अस्तु, तुम्हें संतोष करना चाहिए। जो प्रारब्ध में होता है, वही मिलता है। अगर तुम्हें अपनी इस दशा पर

बहुत दुःख है तो तप करो तथा ईश्वर की आराधना करो। तो तुम पिता की गोद क्या, उस परम पिता की गोद में बैठ सकोगे, जिसके लिए ऋषि-मुनि तरसते हैं।'

बालक ध्रुव के हृदय में मां की बात बैठ गई। उसने कहा—'अच्छा, मां! मैं उस परम पिता की गोद ही प्राप्त करूंगा। उत्तम पिता की गोद और पिता के राज्य का पूर्ण अधिकारी हो, मैं उसमें हिस्सा नहीं बटाना चाहता। मैं ऐसी अनूठी चीज प्राप्त करूंगा जो मेरे पूज्य-पिता और बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों को भी प्राप्त नहीं हो सकी।' यह कहकर वह जंगल में तपस्या के लिए चला गया।

सात वर्ष का बालक जिसने मखमल के फर्श से नीचे जमीन पर पैर भी न रखा हो, पचासों दास-दासियां सेवा में हाजिर रहते हों, वह पैदल ही अकेले वियाबान जंगल में नदी-नालों को पार करता हुआ चला जा रहा था। उसे न धूप की चिंता थी, न धूल की। कांटों से उसके पैर और शरीर लहू-लुहान हो रहे थे। धूप के कारण उसका शरीर झुलस रहा था। धूल उसके शरीर में लगी हुई थी किन्तु वह अपनी धुन में, अनूठा पद प्राप्त करने के ध्यान में चला जा रहा था। उसे और किसी बात पर ध्यान देने की फुर्सत कहां थी। उस धुन में न उसे भूख थी, न प्यास, न नींद, न आराम का खयाल।

चलते-चलते जंगल में उसे सातऋषिगण मिले। उनसे ध्रुव ने अपनी सब व्यथा कही और उसने सहायता मांगी।

मारीच नामक ऋषि ने उससे कहा—'हे राजकुमार! जो अविनाशी परमात्मा की आराधना करते हैं, उन्हें ऊंचा स्थान प्राप्त हो सकता है। इसलिए अविनाशी परमात्मा की आराधना करो तो तुम ऊंचा स्थान प्राप्त कर सकोगे।'

प्रत्येक ऋषि ने इसी तरह उसे परब्रह्म-परमेश्वर की आराधना ही करने को कहा। तदुपरान्त ध्रुव ने उनसे आराधना करने की रीति बताने की प्रार्थना की। ऋषियों ने उन्हें इसकी यथेष्ट रूप से शिक्षा दी। ध्रुव घनघोर जंगल में जाकर ऋषियों की बताई हुई रीति के अनुसार तपस्या करने लगा, उसके आस-पास शेर-चीते तथा अन्य जानवर दहाड़ते थे, किन्तु वह तो परमेश्वर के ध्यान में मग्न था। उसे किसी बात की भी चिन्ता न थी।

जब ध्रुव के माता-पिता के कान में उसके तपस्या करने की बात पहुंची तो वे ध्रुव के पास पहुंचे और उससे प्रार्थना की—'घर चलो, अभी तुम्हारी उमर तपस्या करने की नहीं है।'

ध्रुव ने कहा—'परमात्मा की आराधना करने के लिए कोई भी निश्चित उमर नहीं होती, जब उसकी आराधना के लिए हृदय में ज्ञान हो तभी उसकी आराधना करनी चाहिए, उसके लिए न कोई समय है और न अवस्था।'

यह सुन वे निरुत्तर हो गये। उसकी माता सुनीति रोने लगी और कहने लगी—'बेटा, तेरे बिना मैं कैसे रहूंगी?'

ध्रुव ने माता को उपदेश दिया और कहा—'मैं ईश्वर को प्रसन्न कर तेरे पास जल्दी ही आऊंगा। तुझे तो और भी प्रसन्न होना चाहिए। तू तो बुद्धिमती है। तेरे ही उपदेश से तो मुझे ज्ञान हुआ। तू ही अधीर होगी तो काम कैसे बनेगा? अच्छे कार्यों के लिए बुद्धिमती और वीर माताएं अपने पुत्रों को शुभकर्मों से नहीं रोकतीं।'

सुनीति निरुत्तर हो गई और आशीर्वाद दिया—'तेरी मनोकामना ईश्वर जल्द सफल करे! उसके बाद सुरुचि ने भी क्षमा मांगी। उसे भी उदार-हृदय ध्रुव ने क्षमा-दान देकर विदा किया।

ध्रुव लगातार दिन-रात बिना खाये-पीये समाधिस्थ हो बैठा रहा। बहुत-सी विघ्न-बाधा, प्रलोभन देवताओं ने पहुंचाई, किन्तु वह किसी भी प्रकार विचलित नहीं हुआ। अन्त में भक्तों के भगवान् प्रसन्न हो ध्रुव के पास आये और पूछा—'तुझे क्या चाहिए ?'

ध्रुव ने कहा—'भगवन् ! मैं मूढ़ बालक हूं। आप ऐसा वर दीजिये कि मैं आपकी स्तुति कर सकूं।'



उन्होंने उसके हृदय से अज्ञान का पर्दा हटा दिया। सरस्वती उसकी जिह्वा पर विराजमान हो गई। वह भगवान् की स्तुति कवित्वमय संस्कृत भाषा में करने लगा।

भगवान् ने फिर पूछा—'बता अपनी मनोकामना।'

ध्रुव ने कहा—'आप अन्तर्यामी हैं। आप तो सब के मन की बात जानते हैं।'

भगवान् ने कहा—'अच्छा जा, तू लोक में ध्रुव नक्षत्र के नाम से विख्यात होगा और तेरे पास ही तेरी मां भी तारा बनकर रहेगी।'

यह वचन दे वे चलने लगे तो उसने फिर पैर पकड़ लिये।

उन्होंने पूछा—'अब क्या चाहता है?'

ध्रुव ने कहा—'भगवन्! जब आपने मेरे ऊपर इतनी कृपा दिखाई है तो उन सातों ऋषियों के लिए भी कुछ कीजिए जिनकी कृपा से आपकी आराधना करने की बुद्धि मुझमें आई।'

भगवान् ने कहा—'जा, तेरी यह मनोकामना भी पूरी होगी। यह तेरे पास ही सप्तर्षि के नाम से मशहूर होंगे।' यह कहकर वे अंतर्धान हो गये।

ध्रुव वरदान ले अपनी मां के पास लौट आया। उसके बाद से उसकी छोटी मां का भी स्वभाव बदल गया। उसकी मां का भी आदर उस घर में होने लगा। समय पर उत्तानपाद ने ध्रुव को ही राजा बनाया। वह बहुत दिन तक राज्य-भोग कर अपने लोक को चले गये। हजारों वर्ष बीत जाने के बाद भी रात को उत्तर दिशा में ध्रुव तारा चमकता है और उसके पास ही उसकी मां और सप्तर्षि भी।

गुरुभक्त मोहन

एक छोटे-से गांव में एक विधवा ब्राह्मणी रहती थी। वह बहुत गरीब थी। उसका एक छोटा-सा पुत्र था। ब्राह्मणी दो-चार घरों से भीख मांगकर बालक का पालन-पोषण करती थी। यदि किसी दिन भीख कम मिलती तो ब्राह्मणी स्वयं भूखी रहकर बच्चे को खिला-पिलाकर सो जाती। गांव में अनेक धनी-मानी आदमी थे, पर उस गरीब ब्राह्मणी की किसी को परवाह न थी।

जब बालक छह वर्ष का हुआ तब ब्राह्मणी को बालक के पढ़ाने की फिक्र हुई। गांव में तो गरीब के बेटे को देखकर सभी नाक-भौं चढ़ाते थे। बेचारी ब्राह्मणी ने दूसरे गांव में जाकर एक विद्वान् ब्राह्मण से अपना दुखड़ा रोया। ब्राह्मण को दया आ गई और उन्होंने बालक को पढ़ाना शुरू कर दिया। बालक पढ़ने के लिए जाने लगा। गांव से दो कोस की दूरी थी, पर बेचारा बालक नित्य सवेरे दो रोटियां बगल में दबाकर गुरुजी के पास पढ़ने जाया करता था। रास्ते में जंगल पड़ता था। जब कभी लौटने में देर हो जाती थी तो अन्धेरा हो जाने से बालक को बहुत डर लगता था।

एक दिन गुरुजी के घर कोई उत्सव था। इससे उस दिन बालक को लौटने में बहुत देर हो गई। अन्धेरी रात थी। जंगल में जानवरों की डरावनी आवाजें आ रही थीं। यह सुनकर बालक डर से थर-थर कांपने लगा। उधर ब्राह्मणी भी देर होती देख, पुत्र को ढूंढने निकली। जब बालक घर आया तो बहुत डर गया था। माता ने दुखी होकर कहा—'पुत्र, दरिद्र होने के कारण ही तुझे यह कष्ट भोगना पड़ रहा है। हमारा कोई भी तो आसरा नहीं है।'

बालक ने कहा—'मां, क्या हमारा कोई आसरा नहीं है?'

ब्राह्मणी ने आंखों में आंसू भरकर कहा—'सिर्फ उस भगवान् का आसरा है।'

बालक ने पूछा—'मां, भगवान् रहते कहां हैं। मुझे बताओ, मैं उनसे कहूंगा, हमें एक नौकर चाहिए जो मेरे साथ पाठशाला जाया करे।'

ब्राह्मणी ने कहा—'पुत्र, भगवान् सर्वत्र हैं। सच्चे मन से जो उनका ध्यान करता है। उसी को मिल जाते हैं और उसका सब काज साध लेते हैं।'

माता की यह बात सुनकर बालक के मन में भगवान् पर बड़ी श्रद्धा हो गई।

कुछ दिन बाद बालक के गुरु के पिता का देहान्त हो गया। उनके श्राद्ध का आयोजन हुआ। सभी विद्यार्थी कुछ-न-कुछ भेंट लाये। बालक ने माता से कहा—'हमें भी कुछ भेंट गुरुजी को देनी होगी।'

ब्राह्मणी ने कहा—'तू गुरुजी से पूछना कि मैं क्या भेंट लाऊं? वे हमारी दशा जानते हैं, जो

ठीक समझेंगे वही जवाब देंगे।'

बालक ने गुरुजी से पूछा—'गुरुजी, मुझे क्या आज्ञा है, मैं क्या भेंट लाऊं ?'

गुरुजी ने कहा—'तुझे कुछ नहीं लाना होगा, हम तुझसे बहुत प्रसन्न हैं।'

बालक ने कहा—'नहीं, जब सब बालक कुछ-न-कुछ भेंट लाएंगे तब मुझे भी कुछ लाना चाहिए।'

गुरुजी ने हंसकर कहा—'अच्छा, तू एक लोटा दूध ले आना।'

घर आकर बालक ने कहा—'मां, गुरुजी के लिए एक लोटा दूध देना होगा। उसका क्या बन्दोबस्त होगा ?'

ब्राह्मणी ने कहा—'न हमारे यहां गाय है, न पैसे हैं कि मैं दूध खरीद दूं। न हमें कोई उधार ही दे सकता है। दो-चार जगह से दूध मांग लाने के लिए कोई लुटिया भी नहीं है।'

बालक रोने लगा। उसने सोचा—'अब मैं कैसे गुरुजी को मुंह दिखाऊंगा। मैंने ही तो जिद करके कुछ भेंट लाने को कहा था।'

ब्राह्मणी ने कहा—'बेटा, फिक्र न कर, भगवान् को जो मंजूर होगा, वही हो जायेगा।'

प्रातःकाल ब्राह्मणी कई घर दूध मांगने गई, पर किसी ने भी उसे दूध नहीं दिया। वह निराश हो लौट रही थी कि इतने में गरीब ग्वाले ने कहा—'दूध का क्या करोगी ?'



ब्राह्मणी ने सभी कथा कह सुनाई। ग्वाले ने दया कर दूध से लुटिया भर दी। जिसे ले बालक प्रसन्न मन गुरुजी के पास चला गया। उसे इस भक्ति से दूध लाते देख गुरुजी बड़े प्रसन्न हुए और उसे अत्यन्त स्नेह से पढ़ाने लगे। कुछ दिन में वही बालक महाविद्वान् हो गया।

हक़ीकतराय

हक़ीकतराय का जन्म पंजाब प्रान्त के स्यालकोट नामक नगर में हुआ था। यह वह समय था जब भारतवर्ष का शासन-सूत्र मुगलों के हाथ में था और शाहजहां राजगद्दी पर विराजमान थे। हक़ीकतराय अपने माता-पिता का एकमात्र पुत्र था और जाति का क्षत्रिय था। अभी यह छोटा ही था कि उसके पिता लाला बागमल ने उसे एक मस्जिद में पढ़ने के लिए दाखिल करा दिया। उन दिनों संस्कृत की शिक्षा का कोई समुचित प्रबन्ध न होने के कारण हक़ीकतराय को भी फारसी और उर्दू पढ़नी पड़ी। होनहार तो वह था ही, फारसी को भी वह बहुत जल्दी समझने लगा। यहां तक कि थोड़े ही दिनों में वह पुराने शिष्यों से भी बाजी ले गया। हक़ीकतराय को इस प्रकार सबसे आगे बढ़ते देखकर उसके सहपाठी उससे दिल-ही-दिल में जलने लगे।

एक दिन मौलवी साहब बालकों को कुछ पाठ याद करने के लिए देकर किसी जरूरी काम के लिए बाहर चले गये। उन्हें गये अभी थोड़ी ही देर हुई थी कि बालकों ने शोर-गुल मचाना शुरू कर दिया। हक़ीकतराय इस शोर-गुल से अलग एक कोने में चुपचाप बैठकर अपना पाठ याद कर रहा था। एक लड़का जो कि मुसलमान था, इस डर के मारे कि कहीं हक़ीकत पाठ याद करके सुना न दे, उसके पास जाकर कहने लगा—'क्यों रे, क्या सारे दिन पढ़ता ही रहेगा ? बन्द कर किताब ! बड़ा पढ़ने वाला बना है। हक़ीकतराय किसी की बातों में दखल नहीं देता था। और न यह चाहता था कि उसे कोई सताए।

उसने धीरे से कहा—'देखो जी, फिजूल में दंगा मत करो, नहीं तो दुर्गा भवानी की सौगन्ध, अच्छा न होगा।'

भला एक हिंदू बालक के मुंह से एक मुसलमान यह शब्द कब सुनने को तैयार था। उसने हक़ीकत का हाथ पकड़कर कहा—'तेरी दुर्गा भवानी की ऐसी-तैसी ! बोल किताब रखता है कि नहीं ? बड़ा देवी वाला बना है। देखूं तो तेरी देवी कहां है और मेरा क्या बिगाड़ती है ? ऐसी देवियां रोज हमारी मस्जिद में झाड़ू देती हैं।'

हक़ीकतराय को यह बहुत बुरा लगा। वह झट अपने हाथ छुड़ाकर बोला—'यह आंखें किसी और को दिखाना। जो बातें तुम मेरी देवी माता की शान में कह सकते हो, वह मैं भी तुम्हारी फ़ातमा की शान में इस्तेमाल कर सकता हूं।'

मस्जिद में तहलका मच गया। लड़के पहले ही हक़ीकतराय से द्वेष रखते थे। जब उन्होंने रसूलजादी की तौहीन सुनी तो उन्हें और भी गुस्सा चढ़ गया और वे जल-भुनकर खाक हो गये।

एकाएक सब मिलकर हक़ीकत पर टूट पड़े। हक़ीकत यवन बालकों के इस प्रकार के आकस्मिक

आक्रमण से हैरान हो गया। बेचारा अकेला क्या करता! चुप-चाप बैठ रहा। उसे पूरा विश्वास था कि मैं निर्दोष हूं, परन्तु वहां न्याय करने वाला कौन था। सभी एक रंग में रंगे हुए थे। हां, मौलवी साहब से उसे कुछ आशा थी, परन्तु अभाग्यवश वे अभी तक नहीं आये थे। देखते-ही-देखते बात का वतंगड़ हो गया। मौलवी साहब वापिस आये तो लड़कों ने खूब नमक-मिर्च लगाकर सब बातें कह सुनाईं और यह भी अन्त में कहा, कि हम लोगों के कहने पर उल्टे हम ही लोगों को मारने पर उतारू हो गया। यह बात सुनकर मौलवी से न रहा गया।

यवन-काल में एक हिन्दू बालक की धृष्टता! उनके विचार में यह अपराध अक्षम्य था। मौलवी साहब ने तुरन्त हक़ीकत को बुलाया। हक़ीकत बेचारा मार खा कर एक स्थान पर खड़ा हो मौलवी के आने की प्रतीक्षा कर रहा था। जब उसने मौलवी साहब की कंपित-वाणी सुनी तब उसे विश्वास हो गया कि लड़कों ने सब बातें मौलवी साहब से कह सुनाई हैं, इसी से मौलवी साहब क्रुद्ध हैं। वह समझता था कि लड़कों को पूरी-पूरी सजा मिलेगी। इन्हीं बातों को सोचता हुआ जा रहा था कि रास्ते में ही मौलवी साहब मिल गये। मौलवी साहब ने आव देखा, न ताव; लगे तड़ातड़ चांटे लगाने। हक़ीकत की समझ में नहीं आता था, यह क्या बात है। जब मौलवी साहब अपना बुखार उतार चुके तब उन्होंने हक़ीकत को एक कोठरी में बंद कर दिया, और पुलिस में जाकर सारे मामले की इत्तिला कर दी। न्याय अन्याय के आवरण में छिप गया। निर्दोष बालक की फरियाद परमेश्वर के अतिरिक्त सुनने वाला और कौन था?

हक़ीकतराय के पिता ने जब यह बातें सुनीं तो उनके होश उड़ गये। वह दौड़े-दौड़े मौलवी साहब के पास गये और अनुनय-विनय करने लगे। परन्तु मौलवी साहब ने एक न सुनी। उन्होंने कहा कि इसका फैसला अदालत से होगा और तब तक हक़ीकत हवालात में ही रहेगा। हक़ीकत के पिता स्वप्न में भी मौलवी साहब से ऐसी आशा न रखते थे। मौलवी साहब की खातिर से कभी बाज नहीं आये थे और समय-समय पर मौलवी साहब की मुट्ठी भी गरम करते रहते थे। परन्तु इस समय सब निष्फल गया। जब उसने देखा कि अब सब रास्ते बन्द हो गये हैं, तब उन्होंने मौलवी साहब के सामने दस अशर्फियां रख दीं और पैरों पर सिर रख दिया। कोई दूसरा समय होता तो मौलवी इसके चतुर्थांश पर ही प्रसन्न हो जाते। परन्तु इनकी आंखों में मजहबी नशा छाया हुआ था। वे टस-से-मस न हुए। निराश हो लाला बागमल घर चले गये। दूसरे दिन मामले की पेशी हुई। सबके बयान लिये गये। आखिर क़ाजी ने मौलवी साहब से जब उसकी सजा पूछी, तब मौलवी साहब ने कहा—'शरअ में इसकी दो ही सजाएं हैं "मुसलमान होना या प्राणदण्ड"। मौलवी के मुंह से यह सुन सब हैरान रह गये। इस छोटे से अपराध पर इतनी बड़ी सजा!

क़ाजी ने हक़ीकत से कहा—'लड़के! तेरा रौशन चेहरा देखकर मुझे तरस आता है, मगर शरअ के खिलाफ मैं कुछ भी नहीं कर सकता। हठ न कर, क्यों अपने घर का चिराग़ गुल करता है। मुसलमान हो जा।' हक़ीकत के हृदय में इस समय एक अद्भुत बल का संचार हो रहा था। उसने कड़ककर जवाब दिया—'मैं प्राणों के रहते अपने धर्म को कभी नहीं छोड़ सकता। अगर आपको प्राण-दण्ड ही देना है तो खुशी से दे दीजिए।' बालक की यह बात सुनकर लोग धन्य-धन्य कहने लगे। काजी की आंखों में भी आंसू आ गये। उन्होंने मुक़द्दमा बड़ी अदालत में भेज दिया। बड़ी अदालत से गवर्नर सूबा के पास मुक़द्दमा चला गया। वहां से तीन दिन की मोहलत मिली।

अदालत में बड़ी भीड़ थी। लोगों का तांता लगा हुआ था। परन्तु लोग चुपचाप लाहौर की बड़ी अदालत की ओर बढ़े चले जा रहे थे। सबके चेहरे पर विषाद की कालिमा छाई हुई थी। जनता

वीर हक़ीक़तराय का अंतिम फैसला सुनने के लिए बड़ी व्यग्र थी। जितने मुंह थे, उतनी ही बातें थीं। कोई कहता था—अहा! कैसा सुन्दर लड़का है! हंसता है तो मुंह से फूल झड़ते हैं। क्या हर्ज है अगर मुसलमान होकर ही यह रहे। ज़िन्दगी है तो सब कुछ है, नहीं तो कुछ भी नहीं।'



सब कर्मचारी अपने-अपने स्थान पर बैठ गये। वीर हक़ीकतराय जंजीरों से जकड़ा हुआ लाया गया। उसके चेहरे पर अपूर्व लावण्य था। वह वीरों की नांई अचल खड़ा था। जिसने देखा उसी

को मस्तक भक्ति से नत हो गया। सहसा हक़ीकत के माता-पिता ने आकर कहा—'बेटा अपने बूढ़े माता-पिता पर दया करो। मुसलमान धर्म ग्रहण कर लो। हम तुम्हारी सूरत देखकर जीते हैं। तुम्हारी ज़िन्दगी किसी-न-किसी तरह रहे, हमारे लिए यही बहुत है।' हक़ीकतराय ने जवाब में कहा—'यदि इस बात का मुझे कोई विश्वास दिला दे कि अपना धर्म छोड़ने से मैं सदा के लिए मृत्यु से छुटकारा पा जाऊंगा तो मैं सहर्ष मुसलमानी धर्म ग्रहण कर लूंगा। जब एक बार मरना ही है तो जैसे आज मरा, वैसे कल। फिर अपने प्यारे धर्म को क्यों छोड़ूं। हरेक के भाग्य में ऐसी मृत्यु नहीं होती।'

सब चुप हो गये। भला मौत न होने का ठेका कौन ले सकता था! उसी समय नवाब भी आ गये, और उन्होंने हक़ीकतराय को बहुत समझाया कि वह मुसलमान हो जाए। पर हक़ीकत ने उन्हें भी वही जवाब दिया।

मौलवी और क़ाजी शुभ काम में देर न किया चाहते थे। इसलिए उन्होंने नवाब साहब को जल्दी फैसला सुनाने को बाध्य किया। अन्त में नवाब ने मौत का फैसला सुना दिया, जो सबने कलेजा थामकर सुना। सबके दिल बैठ गये और सिर झुक गये। रात भर वह अन्धेरी कोठरी में बन्द रहा। और उसके माता-पिता दीवारों में टक्करें मारते रहे। प्रातःकाल जल्लाद ने उसका सिर काट लिया। उसकी लाश, उसके माता-पिता को जलाने को दे दी। उसके माता-पिता सब घर-बार लुटाकर फ़क़ीर हो गये और घूमते-फिरते दिल्ली आ पहुंचे। एक दिन बादशाह शाहजहां सोया हुआ था कि हीक़क़तराय की आत्मा ने स्वप्न में सब बातें बादशाह को कह दीं। दूसरे दिन बादशाह जब उठा तो बहुत उदास था और सोच रहा था कि मेरे राज्य में ऐसे अत्याचार होते हैं। यह सोच ही रहा था कि नीचे से किसी ने दुहाई दी।

यह हक़ीकतराय के माता-पिता थे। बादशाह ने उन्हें ऊपर बुलाया और सब बात पूछी। उन्होंने सब बात कह सुनाई। जब बादशाह के स्वप्न की तसल्ली इस प्रकार हो गई तो उसे यक़ीन आ गया। उसने एकाएक लाहौर जाने की तैयारी कराई। जब लाहौर पहुंचे तो नवाब ने जो गवर्नर सूबा था, उसे सब बात सुनाई। बादशाह ने इमाम के बहाने सब काजियों, मौलवियों और उनके कुटुम्बियों को इनाम देने के लिए स्यालकोट से लाहौर बुलाया। रावी नदी के दूसरी ओर खेमे लग गये। नदी चढ़ाव पर थी। जब सब काजी वग़ैरा आ गये तो बादशाह ने मल्लाहों से कह दिया कि इन्हें नदी में डुबो देना। उन्होंने नदी पार करते वक्त सबको डुबो दिया। बादशाह ने नवाब को भी मरवा दिया।

दूसरे दिन एक आम दरबार हुआ। बादशाह ने हक़ीकतराय के माता-पिता को बहुत धन दिया। और एक और पुत्र के लिए परमात्मा से सबने प्रार्थना की, प्रार्थना स्वीकार हुई। बादशाह ने हक़ीकतराय की दो समाधियां एक लाहौर और दूसरी स्यालकोट में अपने व्यय से बनवाई। और हक़ीकत के माता-पिता को बहुत तसल्ली वग़ैरा दी और बहुत-सा धन देकर घर वापिस भेज दिया।

कुछ समय बाद बागमल के घर एक और बालक हुआ जो उसी के समान और भी धार्मिक हुआ।